



**FOLK-CULTURE IN THE RUPAKAS OF
VATSARĀJA**

वत्सराज के रूपकों में लोकसंस्कृति

**DISSERTATION
SUBMITTED FOR THE DEGREE OF
Master of Philosophy
IN
SANSKRIT**

**BY
RAKESH KUMAR SINGH**

**Under the Supervision of
Dr. S. P. SHARMA
Reader**

**DEPARTMENT OF SANSKRIT
ALIGARH MUSLIM UNIVERSITY
ALIGARH (INDIA)
1991**



DS2086

Dr. S. P. Sharma
Reader Dept of Sanskrit
Aligarh Muslim University
ALIGARH.

Dated : June 2 , 1991

I certify that dissertation entitled "Vatsarāja
Ke Rūpakān mein Loka- Sanskriti" (Folk- culture in
the Rūpakas of Vatsarāja) submitted for the award of
degree of Master of Philosophy in Sanskrit by Mr. Rakesh
Kumar Singh is an original work of his own.

He has fulfilled all the conditions laid down in
the Aligarh Muslim University statutes for the purpose.

S.P. Sharma
(Dr. S.P. SHARMA) 2/6/91

Forwarded
to
2.6.91
CHAIRMAN
Department of Sanskrit
Aligarh Muslim University
ALIGARH

प्रास्ताविक

प्रस्तुत 'लघु शोध-प्रबन्ध' 'वत्सराज के स्वरों में लोक संस्कृति' सम० फिम० उपाधि के लिए प्रस्तुत है। लोक संस्कृति विषय संस्कृत साहित्य के लिए कुछ होने लिये प्रयासों को छोड़कर विलुप्त नया है। अभी तक विद्वानों द्वारा संस्कृत साहित्य का शास्त्रीय दृष्टि से ही अध्ययन किया जाता रहा है।

संस्कृत साहित्य के स्वरों पर तो बहुधा यह आरोप लगता रहा है कि वह राजघरानों के ही कृत्यों का प्रकाशक है। उतमें जन सामान्य का वर्णन नहीं है। लोक में संस्कृत भाषा का प्रचलन न होने के कारण लोक संस्कृति विषय सहज होते हुए भी दुर्लभ है। एतदर्थ स्थिर दृष्टि की आवश्यकता है। ग्रामीण दृष्टि भूमि के होने के कारण इस विषय के प्रति मेरी सहज उत्सुकता थी कि मैं इस विषय पर कुछ कार्य करूं। अतः मैंने वत्सराज के स्वरों- जो विभिन्न नाटकेतर विधाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं- में लोक संस्कृति विषय को अपने अध्ययन का विषय चुना।

इस लघु शोध-प्रबन्ध के प्रणयन में अनेक विद्वानों डॉ० तत्प प्रकाश सिंह, प्रेरुष्पा हजेला, वर्तमान विभागाध्यक्ष, सं० विभाग, अलोगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, डॉ० सोहन लाल गौड़, निवर्तमान प्राध्यापक, धर्म समाज कालेज, अलोगढ़ एवं विभाग के सुधीजनों का सहयोग प्राप्त हुआ है, मैं उन सबके प्रति हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

अपने वृज्य गुरुदेव डॉ० तत्प प्रकाश शर्मा, रीडर, संस्कृत विभाग, अलोगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलोगढ़ को तो यह रोम रोम श्रणी है, जिनके अथक सहयोग के कारण ही मैं इस विषय पर कुछ कार्य करने में समर्थ हो सका हूँ।

एत दितिरिक्त मैं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं अपने उन अन्य सहयोगियों का आभारी हूँ, जिन्होंने अनेक अवसरों पर मुझे साहस, सहयोग एवं सम्बल प्रदान किया। शोध-प्रबन्ध के मुद्रण में कुछ त्रुटियों का रह जाना स्वाभाविक है अतः सुधीजन क्षमा कर देंगे, रेता मेरा विश्वास है।

निवेदक

राजेश कुमार सिंह

राजेश कुमार सिंह

विषय-सूची

पूर्य पोरिका

पृष्ठ संख्या

१- २१

वत्तराज :

स्थिति काल

कवित्व

रचनाई

रत्नामोन परित्थितियों की कुष्ठभूमि

राजनैतिक,

साहित्यिक,

ताम्राधिक

धार्मिक

समतामयिक साहित्य और उत्तरी प्रभुत्तियाँ

उत्तर पोरिका

२२- २३

लोक परिराधा और केन

लोक संस्कृति और उत्तरी व्यापकता

लोक संस्कृति के मूलतत्त्व

लोक और संस्कृत साहित्य

अध्याय-१

वत्तराज के ल्यकों की कथावस्तु और उत्तरी उपजोव्य

३४- ६१

अध्याय- २

ल्यकों की कथावस्तु की लोकधर्मिता

६२- ६६

अध्याय-३

वत्तराज के ल्यकों का काव्यशास्त्रीय विवेचन

६८- ८४

और उत्तरी ^{लोक}मूलकता

अध्याय - ४

वत्तराज के ल्यकों में प्रतिबिम्बित लोकधर्म का स्वरूप

८५- ९६

अध्याय-३

रीति रिवाज और लोक व्यवहार

६८ - १०६

अध्याय-४

लोक जीवन के विविध त्व

११० - १२३

संग्रह

१२४ - १२८

संस्कृत ग्रन्थ सूची

१२९ - १३३

संकेत - सूची

अथर्व०

आप० मु०

अ०

अ० मा०

ऐ० प्रा०

कर्म०

किरात०

गा०ओ०ती०

घ० रा० ङ०

चं० सु० ङ०

त्रिपुर०

ते० आ०

दश०

नाट्य०

ना० द०

प्रा० मा० लोक०

मा० का० इति०

मा० ता० इति०

मत्स्य०

महा०

महो०

यजु०

रु० ह०

रुक्मि०

रामा०

वायु०

अथर्ववेद

आपस्तम्ब गृह्य-सूत्र

अग्नेद

अग्नेद भाष्य

ऐतरेय ब्राह्मण

कर्मर धरित भाष

किरातार्जुनोद्यम व्यायोग

गायकवाड ओरियण्टल तोरीज

घन्देश और उनका राजत्वकाल

घन्देश कालीन घन्देश छन्द का

इतिहास

त्रिपुरदाह डिम

तेत्तारोय आरण्यक

दशस्मिन्

नाट्यशास्त्र

नाट्य दर्पण

प्राचीन भारतीय लोक धर्म

भारतीय काव्य का इतिहास

भारतीय साहित्य का इतिहास

मत्स्य पुराण

महाभारत

महोदधर

यजुर्वेद

रुक्मिणीहरण ईहामृग

रामायण

वायु पुराण

शत० ब्रा०

ताम०

तमुद्र०

तं०ता० इति०

ताडि०

ता० द०

ताय०

तं० ता० आ० इति०

हास्य ०

हा० पू०

शतपथ ब्राह्मण

तामवेद

तमुद्र मंथन तमवकार

तंस्कृत साहित्य का इतिहास

साहित्य दर्पण

तायन

तंस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक

इतिहास

हास्य सुडामणि प्रवृत्तन

०.....०

पूर्व शोधिका

पाठ्यक्रम :

स्थितिकान

कवित्व

रचनाएँ

तत्कालीन परिस्थितियों को पृष्ठभूमि

राजनीतिक, साहित्यिक, सामाजिक, धार्मिक

समसामयिक साहित्य और उसकी प्रवृत्तियाँ

वत्सराज

स्थितिकाल :

‘वत्सराज’ नामक अनेक प्यक्तियों का उल्लेख हमें न केवल प्राचीन वैदिक काल में अपितु पुराणकाल में मिलता है जिनका उल्लेख ‘प्राचीन भारतीय धर्मिक कोश’¹ एवं हिन्दी विश्वकोश² में किया गया है। इसी प्रकार आठवीं शताब्दी में गुर्जर-प्रतिहार काल में एक वत्सराज नामक शासक हुआ।³ भोज प्रबन्ध के रचयिता बल्लाल सेन ने धारा नरेश मुंजवरमार के एक मन्त्री का नाम वत्सराज लिखा है जिसे भोज के वध का कार्य सौंपा गया था।⁴ द्वादशवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लाट देश के अधिपति एक चातुर्व्यवसायी वत्सराज का संकेत मिलता है। तोदरन कवि इसी के आश्रय में था।⁵ ग्यारहवीं शताब्दी के निकट महोबा के राजा कीर्तिवर्मन का एक मन्त्री वत्सराज था, जो महोबा का पुत्र और कीर्तिवर्मन दुर्ग का निर्माता कहा गया है।⁶ इसने 1057 ई० में दुर्ग को तोड़ियाँ बनवाई।⁷

एक अन्य वत्सराज कालिंजर नरेश परमर्षिदेव का मन्त्री था। परमर्षिदेव का शासन काल 1165ई० से 1203 ई० तक माना गया है।⁸ परमर्षिदेव के अनन्तर उसका पुत्र त्रैलोक्य वर्म देव 1203 ई० में सिंहासमारुह हुआ और 1241ई०

1. शास्त्री सिद्धेश्वर : प्राचीन भारतीय धर्मिक कोश 1964:पृ० 793, 794, 795
2. बसु, नगेन्द्र : हिन्दी विश्वकोश : हि० सं०: पृ० 556
3. घोषरी, गुलाबचन्द्र : प्रो० हि० ऑफ ना०इ० प्रा०जे०सो०: पृ० 33-35, 39
4. बल्लाल : भोज प्रबन्ध : पृ० 11-13: टी० राजदेव मिश्र
5. कृष्णा धारियर : हि० आ० कला० सं० निद० : पृ० 476
6. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : पृ० 110
7. आई० ए० भाग 18; पृ० 238
8. [अ] उपाध्याय, बलदेव : सं०सा० का इति०: पृ० 614
[ब] आई० ए० भाग 37 : पृ० 121 से 124
[स] विन्टरमिस्त्र : हि० आ० इ० निद० भाग 3 सं०: पृ० 326

तक कालिंजर पर शासन किया।¹ वत्सराज परमर्षिदेव के बाद त्रैलोक्यवर्ष देव के शासन काल में भी मन्त्री पद पर था। यही वत्सराज संस्कृत के प्रसिद्ध छः रूपकों के प्रणेता हैं इसके रूपकों में इस तथ्य के प्रचुर प्रमाण मिलते हैं कि उसने अपनी विभिन्न रचनाएँ कालिंजर नरेश परमर्षिदेव और उनके पुत्र त्रैलोक्यवर्ष देव की आज्ञा से लिखी थीं² इस आधार पर रूपककार वत्सराज का स्थिति काल निश्चित रूप से परमर्षिदेव तथा उनके पुत्र त्रैलोक्यवर्ष देव का शासन काल निश्चित होता है जैसा कि पूर्व में तर्कित किया जा चुका है कि परमर्षिदेव का शासनकाल 1165ई० से 1203 ई० और त्रैलोक्यवर्ष देव का शासन काल 1203ई० से 1241 ई० तक था। अतः यह तो निश्चित है कि त्रैलोक्यवर्ष देव के काल में वत्सराज अपनी कृदावस्था तक पहुँच चुका होगा।

कुछ विद्वानों ने कोर्तिकर्ण चन्देल [1060ई०] के मन्त्री महोदर के पुत्र वत्सराज को रूपक छंदकम् का लेखक बताने का प्रयत्न किया है³ किन्तु वत्सराज ने अपने रूपकों में स्वयं को परमर्षिदेव एवं त्रैलोक्यवर्ष देव का मन्त्री बताया है, अतः यह मत स्वयं दृष्ट हो जाता है क्योंकि वत्सराज कोर्तिकर्ण के प्रपौत्र मदनवर्ण के उत्तराधिकारी परमर्षिदेव और उनके पुत्र त्रैलोक्यवर्ष देव का मन्त्री था।

इसी प्रकार परमर्षिदेव के एक अन्य मन्त्री तलछण के पितामह वत्सराज से परमर्षिदेव के महामन्त्री वत्सराज की समरूपता भी इतिहासकाल और अन्य बहिरंग एवं अन्तरंग प्रमाणों द्वारा सम्मत न होने के कारण विद्वानों को मान्य नहीं है।⁵

1. [अ] मिश्र, केवः : पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : पृ० 132-134

[आ] आई० ए० भाग-36 : पृ० 105

2. रूपक छंदकम् : पृ० 1, 24, 118, 150

3. शास्त्री, बाल : तंमनसि-प्रयाग वर्ष 1 अंक 3 : पृ० 12

4. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : पृ० 1, 24, 118

5. शास्त्री, बाल : पूर्वोद्धृत पत्रिका : अंक-3 : पृ० 11-13

महाकवि जगनिक के आल्हा छंड में मल्लान के पिता वत्सराज ¹ [वत्सराज] का उल्लेख है, ¹ जिसकी मृत्यु परमर्षिदेव के जीवन काल में हो गयी थी। तन् 164। ई० में वाराणसी दर्पण और अमर-कोश की एक टीका का निर्माण वत्सराज नामक विद्वान हुआ है। यह राघव त्रिपाठी का पुत्र रामाश्रय का शिष्य था। ² जल्हण की सूक्ति मुक्तावली- जिसका रचना काल 1257 के करीब है- में एक कवि वत्सराज का उल्लेख है ³ किन्तु इन वत्सराजों से छड़ रूपकों के लेखक वत्सराज भिन्न हैं जैसाकि पूर्व में बताया जा चुका है कि वे परमर्षिदेव और त्रैलोक्य वर्म देव के समकालीन थे जिसके प्रचुर संकेत रूपकों में हैं।

का :

कवि वत्सराज ने अपनी रचनाओं में अपना कोई का परिचय नहीं दिया है। इस सम्बन्ध में अन्तः प्रमाण एवं बाह्य प्रमाण दोनों का अभाव है। अतः महाकवि के माता-पिता का नाम, वर्ग, गोत्र, स्त्री, पुत्र जन्म स्थान आदि के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है, किन्तु इतना निश्चित है कि उनके जीवन का अधिकांश भाग राज्य कार्य देखने के साथ-साथ साहित्य साधना में बीता। उन्होंने संस्कृत रूपकों की अभिनय कला को केवल पुनरुज्जीवन ही नहीं प्रदान किया, अपितु उसके सम्पूर्ण में भी प्रयत्नशील रहे।

धर्म :

कवि वत्सराज सभी देवताओं के प्रति समान भक्ति भाव रखते थे, किन्तु शिव इनके छोटदेव प्रतीत होते हैं। उन्होंने अपने रूपकों का प्रारम्भ शिव स्तुति से ही किया है ⁴ वे 'शिवादेत सिद्धान्त' में विश्वास रखते थे।

1. जगनिक : आल्हा छंड

2. बसु-नगेन्द्र : हि० वि० को० : पृ० 556

3. रूपक छटकम् : भूमिका भाग : पृ० 2

4. किराता० व्या० : श्लोक 6।

उनके वाक्य 'शंकराद्वैत' का अर्थ शंकराचार्य के अद्वैतवाद से भी लिया जा सकता है। किन्तु किरातार्जुनोयम् की कथावस्तु और प्रसंग से यही उचित प्रतीत होता है कि कवि भगवान् शिव के अद्वैत स्वरूप की प्रतिष्ठा करना चाहता है।

कवित्व :

संस्कृत काव्यों में रूपक सजीव विधा है। इन रूपकों में नाटकेतर विधाओं पर अपनी अमिट छाप छोड़नेवाले भास और वत्सराज दो सुपरिचित नाम हैं यद्यपि वत्सराज के रूपक अभिनेयता में भास के तुल्य ही है किन्तु एक बात में वे भास से भी बढ़कर हैं कि संस्कृत साहित्य के ह्रासोन्मुखी काल में भी उन्होंने अप्रचलित दुर्लभ रूपक भेदों की रचना की। इनके रूपकों की कथावस्तु पुराणों एवं लोक कथाओं से ग्रहीत है, तो भी उन्होंने इसमें पर्याप्त परिवर्तन कर जनरूपि के अनुकूल एवं रंगमंच पर अभिनेय बना दिया।

अभिनेयता की दृष्टि से वत्सराज के रूपकों की कथावस्तु तुल्यम्बद, सरल और सुनियोजित है। इसमें न तो वर्णनों की प्रचुरता है और न कथावस्तु का अनावश्यक विस्तार। वत्सराज ने उन्हीं दृश्यों का वर्णन अपने रूपकों में किया है, जिन्हें रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा सके। इनके रूपकों के प्रथम और अन्तिम दृश्य बड़े मनोहारी हैं।

रूपकों में द्वि और समवकार— जैसे रूपकों की छोड़कर— जहाँ शास्त्रीय विधानानुसार पात्रों की संख्या अधिक होती है, इनके समस्त रूपकों में सीमित पात्र हैं। कथोपकथन भी सरल संक्षिप्त और गत्यात्मक होकर चरित्र चित्रण में सहायक है। विस्तृत संवादों को रूपकों में कम स्थान मिला है। आंगिक आदि चारों प्रकार के अभिनय संकेत रूपकों में सुगमता से उपलब्ध हैं।

वत्सराज के रूपकों से इस प्रकार का सकेत मिलता है।¹ कि उस काल में राज-प्रासादों और देवालयों में रूपकों के अभिनय के लिए यात्रा, विजय, धार्मिक उत्सव आदि के अवसरों पर अस्थायी प्रेक्षागृहों का निर्माण होता था।

महाकवि वत्सराज के कवि कर्म को जानने के लिए रूपकों में व्याप्त काव्य तत्त्व को जानना आवश्यक है अतः कला एवं भाव पक्ष के तत्त्वों को ओर ध्यान अपेक्षणीय है।

संस्कृत रूपकों में रस के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता, इस तथ्य से सुपरिचित वत्सराज के रूपकों में रससंचार उत्तम ढंग से हुआ है। किरातार्जुनोष्ण व्यायोग में वीर रस कर्पूर चरित में शृंगार, त्रिपुरदाह में रौद्र, समुद्रमंथन समवकार में वीर रस, डाह्य वृद्धामणि में डाह्य रस की प्रधान स्थिति है। शेष रस प्रधान रसों के उपरकारक हैं। इसी प्रकार अर्थानुकूल शब्दों का सफल प्रयोग वत्सराज ने किया है। उनके रूपकों में अपने हृदय के भावों को प्रकट करनेवाले शब्दों के चयन की विलक्षणता देखी जाती है। इसके लिए वे उपयुक्त पदों का चयन करते हैं। उनकी दृष्टि में दो शब्द

1. [अ] अथ किल नीलकण्ठयात्रा महोत्सव समागतैर्विदग्ध तामाजिकैः

कालंजरपतेर्महाराज श्री परमर्षिदेवस्य अमात्येन कविना

वत्सराजेन विरचितं कर्पूरचरिताभिधानं माण्डमन्त्रितुमादिष्टोऽस्मि ॥

कर्पूर० भा० प्रस्तावना भाग।

[ब] अहं हि कालंजरे चक्रत्वाभियात्रासमागत विदग्धतामाजिकै-

रादिष्टोऽस्मि। यद्यप्यन्द्रोदये देवस्य चक्रत्वाभिनः पुरतो

रुक्मिणीहरणाद्वयः कवि वत्सराज विरचित ईहामृगोऽभिनयः ॥

रु० ह० ई० प्रस्तावना भाग।

परस्पर पर्यायवाची होते हुए भी प्रकरण आदि के अनुसार उनके लक्ष्यार्थ अथवा व्यंग्यार्थ बदल जाते हैं। संस्कृत भाषा में इन्द्र सहस्रनयन, सहस्राक्ष, महेन्द्र, पुरन्दर आदि शब्द इन्द्र के, धनद, धनाधिनाथ धनपति कुबेर के तथा हलायुध कलभद्र कामपाल, हली आदि शब्द बलराम के वाचक हैं और परस्पर पर्याय हैं किन्तु वात्सराज के लिए वे ऐसे नहीं हैं, इसलिए उन्होंने उनका प्रयोग बदलकर किया है जैसे—

॥क॥ कथमन्धबलात्तेषां पाण्डवानां भवेद भयम् ।

सहस्र नयनः पश्ये येषामुज्जागरः तदा ॥ ¹

॥ख॥ दम्भोलिपाणेर्बलसूदनस्य

वाचस्पते । त्वं सचिवोत्तमैः ।

तदत्र मुग्धाम्बुधि दीर्घिकाया

मुत्साहभंग कतमस्तथायम् ॥ ²

॥ग॥ ब्रह्मस्पतिः सायकं विहस्य देव प्रभो पुरन्दर ।

त्रैलोक्यदाहप्रभुरौषधिमः

किन्नात्य किं नात्य स कालकूटः

क्रोधाक्षुरेऽमुत्र न कृत्रिमो

रक्षाप्रकारः कवचादिकः स्यात् ॥ ³

इन पद्यों में सहस्र नयन, दम्भोलिपाणि, पुरन्दर, बल सूदन आदि शब्द विशिष्ट अर्थवाला होने से व्यक्तृति के जनक है इनको वहाँ से हटा देने पर सौन्दर्य नष्ट हो जायेगा। इसी प्रकार मुख्यार्थ से भिन्न जिसे हम लक्ष्यार्थ कहते हैं उसके वृद्धाहरण भी हमें वात्सराज के लयकों में पर्याप्त मात्रा

1. किराता० व्या० : श्लोक 24 : पृ० 8

2. समुद्र० सम० : श्लोक 21 : पृ० 161

3. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : श्लोक 22 : पृ० 161

मिलते हैं :

॥अ॥ आच्छिद्य तपः प्रतिनायकस्य

घन्द्रस्य मन्दप्रतिभस्य लक्ष्मीम्

तां शम्भतीं रात्रिमपास्य दूरे

धूर्तौ रवि पां गणिकामुपैति ¹

॥ब॥ लाक्ष्यवोचिनिचयैस्तरलायताक्षी

प्रधात्य निष्ठुरविषेक दुरधराणि

कन्दर्पदैवतमियं तहतोषवेत्ता

माविष्करोति हृदि तंयमिनो ममापि ²

कमी-कमी अभिषेय तथा लक्ष्यार्थ ते भिन्न, एक नये अर्थ को प्रतीति भी हमें होती है, जिते हम व्यंग्यार्थ कहते हैं। इनके रूपकों में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। अधोलिखित पद्य ध्वनि काव्य का उत्तम उदाहरण है :

त्प्यार्थितो यो नयनाम्बुजेन

घकार यः तर्जयगत्प्रभुं त्वाम् ।

गौरौष येनार्दतनौधृतस्त्वं

स्थानुः त शीरे । हस्तनोय एव ³

कर्म विषय के प्रसंगानुसार वत्सराज रीतियों के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं इनके रूपकों में वेदर्भी ⁴ गौडो ⁵ लाटो ⁶ रीतियाँ रतों को व्यंजना में में अति सहायक सिद्ध हुई हैं। इसी प्रकार इनके रूपकों में भारती, ⁷

1. कर्म० भाषा : श्लोक 4 : पृ० 22-23

2. हास्य० श्लोक 2 : पृ० 133

3. त्रिपुर० श्लोक 6 : पृ० 90

4. कर्म० श्लोक 21 : पृ० 30 : तसुद्र० श्लोक 12 : पृ० 183

5. किराता० श्लोक 28 : पृ० 9 एवं गणभाग : पृ० 9

6. रुक्मिणी० श्लोक : 5 पृ० 38, तसुद्र० श्लोक 12 पृ० 186 : त्रिपुर श्लोक 12, पृ० 102

7. कर्म० श्लोक 26 : पृ० 32, रुक्मिणी० श्लोक 12 : पृ० 48, हास्य० श्लोक 13, पृ०

तात्पत्ती,¹ केशिकी,² आरमटी,³ तथा माधुर्य,⁴ ओज⁵ प्रताप⁶ गुण भी मिलते हैं।

अलंकारों के क्षेत्र में वत्तराज को अनुप्रात⁷ सर्वाधिक प्रिय है। वहाँ-वहाँ उन्होंने यमक⁸ का भी प्रयोग किया है किन्तु अल्पमात्रा में, इसके अतिरिक्त उपमा,⁹ व्यतिरेक,¹⁰ तन्देह¹¹ छुट्टान्त¹² समासोक्ति¹³ आदि अलंकार प्रचुरमात्रा में पाये जाते हैं। शार्दूल पिछोडित [77] कलन्ततिलका [68] उपजाति [55] अनुप्रात [56] शिखरिणी [33] छन्दों के अतिशय प्रयोग से प्रतीत होता है कि ये छन्द उन्हें प्रिय हैं। यत्तदतिरिक्त रूपकों में अन्य छन्द भी मिलते हैं। यहाँ तक भाषा-शैली का प्रश्न है। वत्तराज के रूपकों में भावों को अभिव्यक्त करने की अमूर्त क्षमता है। एक ओर वे मूर्त पदार्थों के चित्रण में तत्काल हैं वहीं दूसरी ओर अमूर्त में भी। उनकी भाषा सर्वत्र तरल, तरल,

1. किराताः श्लोक 6 : पृष्ठ 2, तसुद्रः 1/44 : पृष्ठ 167, त्रिपुरः श्लोक 21 : पृष्ठ 185
2. रुक्मिणीः श्लोक 8 : पृष्ठ 61, कर्पूरः श्लोक 13 : पृष्ठ 27
3. रुक्मिणी : श्लोक 21 : पृष्ठ 43, तसुद्रः : श्लोक 14 : पृष्ठ 125
4. हास्यः श्लोक 2 : पृष्ठ 133, रुक्मिणी 4 : पृष्ठ 57, कर्पूर श्लोक 1 : पृष्ठ 26
तसुद्रः : श्लोक 5 : पृष्ठ 180
5. किराता श्लोक 38 : पृष्ठ 14, रुक्मिणीः श्लोक 24 : पृष्ठ 44, त्रिपुरः श्लोक 7 : पृष्ठ 100
6. रुक्मिणीः श्लोक 20 : पृष्ठ 43, कर्पूरः श्लोक 8 : पृष्ठ 25, हास्य श्लोक 16, पृष्ठ 126
7. हास्यः : श्लोक 19 : पृष्ठ 127, रुक्मिणीः श्लोक 27 : पृष्ठ 44,
कर्पूरः श्लोक 21, पृष्ठ 30, किरात 27, पृष्ठ 9
8. किराताः श्लोक 6 : पृष्ठ 2, त्रिपुरः श्लोक 4 : पृष्ठ 89
9. त्रिपुरः श्लोक 8 : पृष्ठ 91, तसुद्रः श्लोक 38 : पृष्ठ 164, किराताः श्लोक 14 : पृष्ठ 5, हास्यः श्लोक 114 : पृष्ठ 135
10. किराताः : श्लोक 15 : पृष्ठ 6
11. रुक्मिणीः श्लोक 20 : पृष्ठ 71, किरातः श्लोक 13 : पृष्ठ 4
12. रुक्मिणीः : श्लोक 12 : पृष्ठ 49
13. हास्यः : श्लोक 6 : पृष्ठ 119, रुक्मिणीः : श्लोक 14 : पृष्ठ 70

प्रवाहमयी एवं भावपूर्ण है, जिसमें प्रताप गुण की अधिकता है।

इनका शब्द कोश अत्यन्त समृद्ध है। अनेक पर्यायों का प्रयोग उनके भाषाधिकार की दृष्टि से है। शब्दों में पदे-पदे सुक्तियाँ एवं मुहावरे भरे पड़े हैं, जो वाक्य के सहज सुन्दर हैं। शब्दों के सम्बन्धों की भाषा सरल एवं व्यञ्जनापूर्ण है, जिसमें हृदयता का अभाव है। कहीं-कहीं भाषा समाप्त बहला भी है।

वत्सराज के शब्दों की शैली का निजी वैशिष्ट्य है, जिसमें एक ओर व्यञ्जकता और प्रभावोत्पादकता का मणिकान्धन संयोग है तो दूसरी ओर पाण्डित्य और प्रवाह का मञ्जुल संगम। जहाँ भावाभिव्यक्ति में भाषा हृदय की आकर्षित कर लेती है वहीं भावाभिव्यञ्जना में अतिशय समर्थ है। वस्तुतः कवि मानव हृदय के मूल स्रोतों में प्रकट हो, माना भावों, संवेगों का अनुभूति के साथ वर्णन करता है। वह भावनाओं की गहराई तथा तटस्थता शब्दों को व्यञ्जित करने एवं कार्यक्षमों के सुदृढातिशुद्ध अंश को पूर्ण स्पष्टता के साथ उपस्थित करने में अद्वितीय है। उसके द्वारा वर्णित विषयों में सहसा मोड़ आ जाना, तरत सम्बन्ध, सजीव बहुरंगी वर्णन, अन्तःकथाओं का रोचक संकेत, ध्वन्यात्मकता और संक्षिप्तता, उक्ति-प्रत्युक्ति की विविधता आदि तत्त्वों से उसकी शैली समृद्धिपूर्ण एवं मनोहारि बन गई है। रस वेश लता, मनोरंजकता, सम्मोहकता, ओदात्त और माधुर्य वत्सराज की शैली का गुण है।

रचनाएँ :

गायकवाड़ ओरियण्टल तोरीज बडौदा से 1918 ई० में सो०डी० दलाल द्वारा प्रकाशन के उपरान्त वत्सराज के शब्द प्रकाश में आये। इससे पहले 1914 ई० में प्राचीन हस्त लिखित प्रतियों की खोज करते हुए छेत्रवासी पांडा पाठन [गुजरात] के जैन भण्डार में इन्हें ताड पत्र पर लिखित दो पाण्डुलिपियाँ मिलीं।¹ प्रथम पाण्डुलिपि में हास्यपूडामणि प्रहसन, त्रिपुर दाह डिम,

किरातार्जुनोयं व्यायोग और समुद्र मंथन समवकार रूपक प्राप्त होता है ¹
दूसरी पाण्डुलिपि में कर्पूर चरित भाण तथा रुक्मिणीहरण ईहामुग है। ² एक
ही व्यक्ति द्वारा लिखित ये पाण्डुलिपियाँ हैं। इस तरह वत्सराज द्वारा
लिखित ये छः रूपक आज हमें प्राप्त हैं।

कुछ संस्कृत विद्वानों के अनुसार इन्होंने दस रूपकों की रचना की थी। ³
कुछ ने प्रमाणभाष में इनकी संख्या आठ बताई है, किन्तु वह उचित प्रतीत
नहीं होती। ⁴

कवि वत्सराज ने अपने रूपकों में - रुक्मिणीहरण, ईहामुग, त्रिपुरदाह
डिम, समुद्रमंथन समवकार, किरातार्जुनोयम् व्यायोग की कथावस्तु का चयन
पुराणादि से किया है। रोम रूपक- हास्य चूडामणि प्रहसन एवं कर्पूर चरित
भाण रूपककार की कल्पना से प्रादुर्भूत है, जो तत्कालीन समाज से प्राप्त है। ⁵

रुक्मिणीहरण चार अंकोंवाला ईहामुग है। इसमें यदि नरेश की वागदत्ता
पत्नी रुक्मिणी के हरण का वृत्तान्त है। इसमें सभी नाटकीय सन्धियाँ उपलब्ध
होती हैं तथा नाट्यशास्त्रीय नियमों का पालन हुआ है। रूपक में कृष्ण के
साथ विष्णुमान के विशेष संबंध तथा छलपूर्वक युद्ध रोकने का कर्म है। लोक
देवी लोभाग्र्य गौरी ⁶ तथा इन्द्र-इन्द्राणी ⁷ का पूजन एवं अनेक गुण ⁸ और

1. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : क्रमांक 9 : पृष्ठ 258

2. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : भाग 1 : पृष्ठ 10, 36

3. [अ] उपाध्याय, बल्देव : संज्ञा 0 का इति 0 : पृष्ठ 618 : सन् 1958

[आ] सिंह, इन्द्रपाल : संस्कृत नाटक समीक्षा : पृष्ठ 19 : सन् 1960

4. गैरोला, वाच 0 : संज्ञा 0 इति 0 : पृष्ठ 821

5. [अ] उपाध्याय, बल्देव : पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : पृष्ठ 618

[आ] पाण्डेय, यन्मोहर : संज्ञा 0 का इति 0 : पृष्ठ 258

6. रूपक घटकम् : पृष्ठ 38

7. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : पृष्ठ 65

अमुम ¹ शकुनों का उल्लेख प्राप्त है। इस रूपक को नान्दो अति सुन्दर है तथा स्त्री पात्र सुकुदि संस्कृत का प्रयोग करती है।

तमुद्रमथन समवहार में मथन का घृतान्त तीनों अंकों तविस्तार है। नान्दो पाठ के अनन्तर सूत्रधार एवं स्थापक का कथोपकथन है। रूपक में गुप्त शकुन ² और अपशकुन, ³ अग्निस्तम्भ ⁴ आदि का वर्णन है। वस्तुतः तमुद्र मथन की घटना गाथा है। प्रहेलिका मूलक वर्ता के द्वारा सूत्रधार और ग्यारह भाई साथ-साथ सम्पत्ति पाना चाहते हैं। स्थापक परमर्षिद अथवा तमुद्र की शरण का सुझाव देता है, इसी उक्ति के आधार पर नेपथ्य से कोई तमुद्र के तारे मनोरथ पूर्ण होते हैं- कहता है अनन्तर मथन से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

त्रिपुरदाह डिम चार अंकोंवाला है। इसमें शिव द्वारा त्रिपुरातुर की राजधानी के विनाश की वर्णना है। देवी और ऋषियों द्वारा की गई महेष्वास्तुति से रूपक को तत्समाप्ति होती है। भरतवाक्य इन्द्र द्वारा प्रोक्त है। ⁵ लोक के कुलाचार ⁶ अमुम शकुन ⁷ एवं इन्द्रजान ⁸ एवं दुःस्वप्नों ⁹ का रूपक में वर्णन है। किरातार्जुनीयम् व्यायोग रकांको है इसमें अर्जुन और शिव का युद्ध दिखाया गया है। कथानक भारवि के किरातार्जुनीयम् का है। ¹⁰ नान्दो

1. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : पृष्ठ 65
2. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : पृष्ठ 50, 52, 54
3. पूर्वोक्त ग्रन्थ : पृष्ठ 187, 188, 181
4. पूर्वोक्त ग्रन्थ : पृष्ठ 187
5. पूर्वोक्त ग्रन्थ : श्लोक 24-24
6. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : श्लोक 5 एवं गद्यभाग : पृष्ठ 100
7. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : श्लोक 11 : पृष्ठ 94, 104
8. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : श्लोक 15 : पृष्ठ 95
9. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : श्लोक 3 : पृष्ठ 110
10. उपाध्याय, वल्लभ : सं० ता० का इति० : पृष्ठ 618

में भवानो वन्दना है। लोक जोवन के उपयोग में आनेवाले कुदाल,¹ कुल्हाड़ी,² फरसे³ आदि शब्दों का रूपक में उल्लेख है। जादू⁴ का वर्णन इसमें प्राप्त है। किरात शबर आदि बंगली जातियाँ भी वर्णित हैं।

क्षूर धरितभाण पत्तराय का शास्त्रबद्ध भाग है। वह नीलकण्ठयात्रा महोत्सव पर परमर्षिद को आज्ञा से अभिनीत किया गया था। काव्यमय कथा पर आधारित यह रूपक क्षूरक को पूत छोड़ा एवं केया के साथ उसकी प्रणयलोला से सम्बन्धित है। लोक देवता माझिद्ध⁵ रूपक में एक मात्र तिदि प्रदायी देवता हैं।

हास्य घुडामणि प्रहसन रकांकी हैं जिसमें केवली विद्या का दम्भ करनेवाले आचार्य ज्ञानराशि को हँसी उड़ाई गई है वह अपनी अलौकिक विद्या के द्वारा गुप्त और छोई हुई वस्तुओं एवं गड़े हुए धन का पता लगा सकता है।

विभिन्न प्रकार के छल छद्मों एवं मूर्खतापूर्ण क्रियाओं से अपना व्यापार चलाता है। गुरु में ब्रह्मा न रखनेवाला कौडिन्व नामधारी उसका एक मात्र शिष्य है। रूपक में तत्कालीन सामाजिक जीवन, मठों, मन्दिरों का जीवन्त चित्रण है।

तत्कालीन परिस्थितियों को घुष्ठभूमि :

किसी कवि का मूल्यांकन करते समय हमें तत्कालीन परिस्थितियों को घुष्ठभूमि जानना आवश्यक है, अन्यथा उसका यथार्थ मूल्यांकन सम्भव नहीं है

1. रूपक षटकम् : श्लोक 28 : पृष्ठ 9

2. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : श्लोक 28 : पृष्ठ 9

3. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ * श्लोक 28 : पृष्ठ 9

4. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ * पृष्ठ 2 गद्यभाष्य

5. पूर्वोद्धृत : श्लोक 23 : पृष्ठ 31

6. [अ] कोथ- संस्कृत ड्रामा : पृष्ठ 265

[आ] उपाध्याय, बलदेव : सं० ता० का इति० : पृष्ठ 618/1958

[इ] उपाध्याय, रामजी : सं० ता० का इति० : पृष्ठ 157 तन् 1961

तत्समय की विचारधाराओं को बिना जाने कृतियों के महत्त्व को उद्घाटित नहीं किया जा सकता, क्योंकि साहित्य पर तत्कालीन समाज का प्रभाव अवश्य पड़ता है। अतः लेखक तथा उसकी रचना के मूल्यांकन के लिए तत्कालीन साहित्यिक, राजनैतिक धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि का ज्ञान अपेक्षित है। इस दृष्टि से पत्तराजकालीन विभिन्न परिस्थितियों की पृष्ठभूमि जानना आवश्यक है।

राजनैतिक परिस्थितियाँ :

थानेवर के वर्धनवंशीय छर्ष की मृत्यु के पश्चात् का काल जिसे हम सामान्यतया राजपूत काल के नाम से जानते हैं— में राष्ट्रीय एकीकरण की भावना का अभाव था। सम्पूर्ण भारत छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटा था। चारों ओर विकेन्द्रोक्ति था। सभी राज्यों की अपनी स्वतन्त्र सत्ता थी। राज्यों में परस्पर युद्ध का बोलबाला था, जो उत्थान पतन की ओर अग्रसर थे।

छोटे-छोटे राज्यों में बँट होने से युद्ध कुशल राजपूत जाति एकता के अभाव में मुस्लिम आक्रमणकारियों से पराजित होकर उन आक्रमणकारियों के अधीन होती गयी।

इस समय गुजरात में सोलंकीका का प्रशासन स्थापित हो गया था। कन्नौज अब ग्वालियर से स्वतन्त्र था। मगध की सत्ता समाप्त हो चुकी थी। बंगाल में पालका का शासन था, किन्तु ग्यारहवीं शती में पालों के स्थान पर सेन का का प्रादुर्भाव हुआ। 12वीं शती में उत्तर भारत के तीन राज्य सिन्ध, मुलतान, पंजाब, मुसलमानों के कब्जे में थे। तथा उत्तर भारत में सिन्ध, मुलतान, पंजाब, कश्मीर कामरूप, नेपाल, कन्नौज, चेदि जेजाक भुक्ति, मालवा, अन्हिलवाड़, बंगाल, मेवाड़ दिल्ली और शाकम्भरी राज्य थे।

इन राज्यों में कुछ शक्तिशाली राज्य थे, जिन्होंने मुस्लिम आक्रमणकारियों को सत्ता के विरुद्ध संघर्ष किया, उनमें एक चन्देल साम्राज्य भी था।

इन चन्देल शासकों ने 13वीं शती तक जेजक भुक्ति पर शासन किया। इन शासकों में विद्याधर नामक एक ऐसा शासक हुआ जिसके विरुद्ध महमूद को भी सफलता नहीं प्राप्त हुई थी, किन्तु परमर्दिद की मृत्यु के पश्चात् इस का पतन हो गया।¹ चन्देल साम्राज्य में बुन्देल खण्ड, कालंजर, झाँसी आदि साम्राज्य सम्मिलित थे।

तद्विषय में हम कह सकते हैं कि उत्तरी भारत छोटे-छोटे राज्यों में बँटा था। भारत में राजनीतिक एकता का अभाव था। देश की सुरक्षा के लिए कोई-रक्षा व्यवस्था न थी। इन राज्यों में मधुर सम्बन्ध न थे। वे पारस्परिक वैमनस्य के कारण सदैव एक दूसरे पर आक्रमण करते रहते थे।² यही कारण है कि तुर्क आक्रमण के सामने शक्तिशाली एवं पराक्रमी राजपूत भारत की स्वतन्त्रता की रक्षा न कर सके और देश की राजनीतिक स्थिति ने तुर्क आक्रान्ताओं की विजय में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

साहित्यिक परिस्थितियाँ :

साहित्य और भाषा की दृष्टि से इस काल का विशेष स्थान है। एक तरफ संस्कृत भाषा जन सामान्य के मध्य लुप्त हो रही थी, तो दूसरी ओर अनेक अपभ्रंस भाषाओं के स्थान पर हिन्दी तथा उसकी बोलियों का स्वरूप निखर रहा था। बुन्देल खण्डो, मालवी, ब्रज, वधेलखण्डो आदि भाषाएँ अस्तित्व में आ चुकी थीं।

यह युग सम्पूर्ण भारतवर्ष में सांस्कृतिक संक्रमण का युग था। भाषा, साहित्य, धर्म संस्कृति—सभी में विभिन्न तत्वों का अमूल्यपूर्ण समावेश हो रहा था, जिससे यह युग 'संक्रमणकाल' नाम से जाना जाता है। इस संक्रमण की स्थिति में अनेक राजकां भारत की सांस्कृतिक परम्परा को अधुन बनाये

1. शर्मा, अयोध्यानाथ : पृ० ८१० बुन्देल० का इति० : पृ० 103

2. त्रिपाठी, आर०एस०: हि० ऑफ़ रजि० इण्डि० : पृ० 509

रखने में सन्नद दिखाई देते हैं। कश्मीर, कन्नौज, वाराणसी, मालवा, गुर्जर आदि देशों के नरेश तथा चोल, पाल, सेन आदि का के राजा संस्कृत के संरक्षण में अपना भरपूर योगदान दे रहे थे। यही कारण है कि इस संक्रमण काल में भी देश के विभिन्न भागों में संस्कृत के महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना हुई।

तत्कालीन साहित्यिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में चन्देलों के राजत्व काल में साहित्य की बहुविध उन्नति हुई। संस्कृत की ब्राह्मी लिपि से नवीन अक्षरों का विकास हुआ। साहित्य में लोकप्रणीय अवधारणाओं की वृद्धि हुई। इन चन्देलवंशीय शासकों ने राज्याश्रय प्रदान कर कृष्ण मिश्र,¹ देवद,² गदाधर,³ माधव⁴ राम⁵ नन्दन⁶ वत्सराज⁷ जैसे कवियों ने साहित्य में श्री वृद्धि करायी।

संस्कृत के क्षेत्र में इन राजाओं ने कवि, विद्वानों को न केवल राजाश्रय प्रदान किया, अपितु उन्होंने स्वयं साहित्य सर्जना को। राजा गण्डदेव,⁸ परमर्षि एवं उत्तका मन्त्री उस युग के प्रसिद्ध कवि थे।

इस युग के कवि केवल साहित्य सर्जक ही नहीं थे, अपितु वे युद्ध के मैदान में भी जाया करते थे।

1. मिश्र, केवः यः का राजः काः : पृ० 226

2. ए० ई० भाग 1 : पृ० 123

3. मिश्र, केवः पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : पृ० 216

4. ए० ई० भाग 1 : पृ० 123

5. वही पुस्तक : पृ० 138

6. वही पुस्तक : पृ० 138

7. रूपक षट्कम् : प्रस्तावना

8. दि लाइफ टाइम्स ऑफ मुल्तान महमूद ऑफ गजन : पृ० 114

9. शर्मा, ए० एन० : यः काः काः काः काः इति०

सामाजिक परिस्थितियाँ :

इस युग का समाज वैविध्यपूर्ण था। मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व तक बौद्धों के साथ तालमेल की प्रक्रिया चालू थी। वर्ण व्यवस्था का आधार कर्म न होकर जन्म था। इस समय वर्णव्यवस्था में जटिलता¹ आ गई थी। अनेक अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाहों तथा जीविकोपार्जन के विभिन्न व्यवसायों के आधार पर अनेक नवीन जातियों का प्रादुर्भाव हो गया था। लोगों के व्यवसाय के आधार पर जाति का नाम पड़ गया था।² समाज में अन्तर्जातीय विवाहों का बहिष्कार रुढ़ था। ब्राह्मणों को निरंकुशता हो इसका कारण थी।³ क्योंकि ब्राह्मणों ने ऐसी स्थिति पैदा कर दी थी कि श्रेष्ठ वर्ण समाज में हेय बन गये थे। ब्राह्मण क्षत्रिय आदि को प्रतिष्ठा पूर्वक थी। समाज में ब्राह्मण देवताओं के समान पूजे जाते थे। क्षत्रिय के हाथों में शक्ति का केन्द्रोत्कर्ष होने से उनका उच्च स्थान था। शुद्रों की अच्छी स्थिति न थी, किन्तु उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ था।

इस युग में बाल विवाह का पूर्ण निषेध था। स्त्रियाँ साधारणतया पदार्थ नहीं करती थीं। कन्याओं के विवाह यौवमारम्भ के पूर्व कर दिये जाते थे। विवाह में धार्मिक, सामाजिक रीतियों का जोर-शोर से पालन किया जाता था। विधवाओं की स्थिति शोचनीय थी। सती प्रथा का भी प्रचलन था। किन्तु वह राजपरिवारों तक सीमित था। स्त्रियों पर कठोर अनुशासन रखा जाता था, किन्तु वे सामाजिक कार्यों में भाग लेती थी।

इस युग में बाल हत्या का प्रचलन था। यह सिर्फ राजपूतों में ही प्रचलित थी। अनेक राजपूतों में पुत्रों के जन्म होने पर उसको हत्या कर दी जाती थी।

1. श्रीवास्तव, के० सी० : प्रा० भा० का इति० : पृ० 608

2. भित्तल, ए० के० : प्रा० भा० राज० एवं तर्क इति० : पृ० 706

3. मजूमदार, आर० सी० : ए शि० हि० ऑ० इण्डि० : पृ० 556

धार्मिक परिस्थितियाँ :

हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात् राजपूत भारत के विविध प्रदेशों में शासन करने लगे थे। देश में कोई एक शक्तिशाली साम्राज्य नहीं था। बौद्ध धर्म की लोकप्रियता क्षीण हो चुकी थी। वह अनेक शाखाओं में बँटकर विकृत हो चुका था।

शाक्तों की तान्त्रिक प्रणाली से प्रभावित होने के कारण सहज यानो सिद्धों में गुह्य साधना धीरे-धीरे प्रवेश करती जा रही थी। इन तान्त्रिक सिद्धों का कार्य क्षेत्र केवल बंगाल हो रह गया था। समाज के सदाचार की मान्यताओं की हस्तमें तनिक भी परवाह न थी। क्या खाद्य है, क्या अखाद्य है, क्या पेय है, क्या अपेय, क्या करणीय है, क्या अकरणीय, कितनी स्त्रो से यौन सम्बन्ध विहित है, कितने नहीं- इन सब बातों की हस्तमें कोई अर्थ नहीं था।¹ ये अपनी रहस्यात्मक गुह्य साधना के द्वारा साधारण जनता को चमत्कृत कर देते थे। फलतः जन सामान्य उनमें अलौकिक शक्ति का दर्शन करता था।

जित प्रकार देश के पूर्वो भागों में सिद्धों का प्रभाव था, उतने प्रकार पश्चिमो भाग पंजाब एवं राजस्थान में नाथपंथी योगियों का प्रभुत्व था। यद्यपि इस पंथ का मूल भी वज्रयान शाखा है तथापि इनकी साधना में सदाचार की प्रधानता थी और सिद्धों जैसी अलोलता न थी। गोरक्षनाथ ने पतंजलि के योग के सिद्धान्त पर हठयोग का प्रवर्तन किया था, किन्तु विरहित समाज इससे अप्रभावित हो रहा।

वस्तुतः यह वैष्णव धर्म की प्रधानता का युग था। इस काल में वैष्णव और शैव सम्प्रदायों की बड़ी उन्नति हुई। दोनों सम्प्रदायों ने भक्ति पर ही जोर दिया। अनेक राजा और विद्वान विष्णु और शिव के पुजारो थे। शैव लोग जप, तप, यज्ञ, प्राणायाम और समाधि पर ज्यादा जोर देते थे। शैवों में कुछ लोग कापाल और कालमुख नाम से जाने जाते थे।

धार्मिक समन्वय का प्रबल प्रचार इस युग में हुआ। गौतम बुद्ध विष्णु के अवतार मान लिये गये। शैवों और वैष्णवों का पारस्परिक कलह समाप्त हो गया, इसके फलस्वरूप लोक में वैष्णव और शैव धर्म काफ़ी लोकप्रिय हो गये। शंकर के अद्वैतवाद का प्रभाव मोरत होने के कारण केवल विद्वानों तक सीमित था।

समसामयिक साहित्य और उसकी प्रवृत्तियाँ :

इस युग में अनेक साहित्य की रचना हुई, और साहित्य के क्षेत्र में विविध प्रवृत्तियों का समायोजन किया गया। नाटकों के क्षेत्र में महाभारत की फुटकल घटनाओं को आधार बनाकर अनेक नाटकों की रचना हुई।¹ उदाहरणार्थ केरलीय कवि कुम्भोदर वर्मन् ने 'सुम्भ्रा धनञ्जय' और 'तापती संवरण नाटक' रघुदेव ने 'ययाति चरित' विष्णुनाथ [1316ई0] ने 'सौमन्धिका हरण' नामक व्यायोग लिखा।

कभी-कभी ऐतिहासिक पुरुषों को नायक बनाकर नाटकों की रचना हुई। जैसे बिल्हण कृत 'कर्ण सुन्दरी'। इस युग में जोषित भूपतियों की प्रशंसा में भी नाटक लिखे गये। ये लोभे-लोभे प्रवृत्तियाँ हैं।² इन नाटकों में 'ललित विशाहराज नाटिका' तथा सोमदेव कृत 'हरकेलि नाटक' - ये दोनों प्रस्तर छन्दों पर उत्कीर्ण कराये गये हैं। उपदेशात्मक स्वरूप भी संस्कृत साहित्य में लिखा गया जैसे कीर्तिमिश्र कृत प्रबोध चन्द्रोदय। विद्वत्समाज में यह नाटक बहुत लोकप्रिय रहा। इसके अनुकरण पर बहुत से नाटक बनाये गये हैं जैसे- जैन कवि यशपाल कृत 'मोह पराजय' आदि।

संस्कृत काव्यशास्त्र के क्षेत्र में यह स्वर्णयुग कहा जायेगा। 11वीं शती के कम्मोरो पण्डित मम्मट ने पूर्ववर्ती काव्य शास्त्रियों के मतों को ग्रहण कर उसमें समन्वय करते हुए 'काव्य प्रकाश' नामक ग्रन्थ लिखा, जो अति लोकप्रिय

1. विन्टर्बित्ख : भा0 सा का इति0 : भाग 3 ख0 : पृ0 323

2. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : पृ0 327

हुआ। हेमचन्द्र ने कवियों के उपयोग के लिए 'कवि कण्ठाभरण' तथा सौन्दर्य समीक्षात्मक 'औघित्य विचार-वर्षा' नामक ग्रन्थ लिखा। इसी शती के भोज राज्य ने साहित्यशास्त्र विषयक एक व्यापक ग्रन्थ 'सरस्वती कण्ठाभरण' लिखा, जिसमें गुण को अधिक महत्त्व दिया गया। इसमें रस-बुंगार को छोड़कर रोग दण्डों को नकल है। ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता है, छन्दों का उपन्यास। जिसमें कुछ प्राकृत के छन्द हैं। इन्होंने का लिखा 'बुंगार-प्रकाश' नामक अंकार शास्त्र विषयक ग्रन्थ है, जिससे बड़ा कोई ग्रन्थ नहीं है। इसमें रसों की संख्या दस मानी गयी है। इसमें काव्यशास्त्र और नाट्यशास्त्र दोनों का विवेचन है।

सुनात्मक ग्रन्थों की रचना भी इस काल में हुई। जैन विद्वान वाग्भट ने 'काव्यानुशासन' और हेमचन्द्र ने भी 'काव्यानुशासन' नामक ग्रन्थ लिखा। इन जैन विद्वानों ने स्वयं इस पर टोकारें लिखीं। 12वीं शती के लघ्यक ने इसी प्रकार 'अंकार सर्वस्व' लिखा। काव्य विद्वान्ताओं के कारण इस ग्रन्थ को बड़ा सम्मान मिला। ये पूर्णतया मम्मट पर आश्रित हैं। इस काल में काव्य प्रकाश के टंक पर लक्षण ग्रन्थ लिखे गये जैसे विद्याधर का 'एकावली' नामक ग्रन्थ।

संस्कृत काव्यों के क्षेत्र में इस युग की प्रवृत्ति स्पष्ट है। अनेक विद्वत्तापूर्ण काव्यों की रचना इसीसमय में हुई, जिनमें काव्यपथ कम और शास्त्र पथ अधिक था।¹ हेमचन्द्र ने व्याकरण का नियम बताने के लिए 'कुमारपाल चरित' नामक ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना कर डाली। यह बात उल्लेखनीय है कि इस युग के लेखकों की शायद ही कभी नये कथानक की लालसा जाग्रत हुई हो। प्राचीन पौराणिक उपाख्यानों और खोरगाथाओं की बार-बार इन काव्यों में नये नये रूप में उपस्थित किया गया है। वे यह दिखाना चाहते हैं वे सुप्रसिद्ध और धिसेपिटे कथानक को नये वर्णों से सजा सकते हैं।²

1. विन्दर्जित्य : भा० ता० का इति० : भाग 3 उ० 1 : पृ० 102

2. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : भाग 3 : छण्ड 1 : पृ० 105

पाठकों के समक्ष को दुधियानुसार ज्येन्द्र ने 'रामायण मंजरी,' 'भारत मंजरी' और बृहत्कथा मंजरी की रचना की और बृहत्काय ग्रन्थों का संक्षिप्तोक्ति करवा दिया। वैद्य कवि अम्बरचन्द्र [1243ई०] ने 18 सर्गों में 'भाल भारत' महाकाव्य की रचना की। इस प्रकार एक ओर तो प्राचीन महाकाव्यों के संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किये गये और दूसरी ओर प्रसिद्ध नए रचनाओं की पथ में लिखा गया।

वत्सराजकालीन कवियों की प्रवृत्ति न केवल कठिन काव्यों की लिखने की थी, अपितु वे उत तेजस्वी में तज्ज्व भी हुए। उदाहरणार्थ संध्याकरनन्दि ने 'रामायण परिणत' लिखा, जिसमें एक अर्थ रामपरक है तो दूसरा रामपाल परक। माधव भट्ट [1182-1197] ने 'राघव पाण्डवोष्ण' लिखा, ये वक्रोक्ति में अतिशुद्ध है। हरदत्तसूरि का 'राघव नैषधीयम्' भी इसी प्रकार का है। पौराणिक कथाओं की आधार बनाकर अमोरो कवि मंड ने कोट्टण्ण परिणत और राघवानक ने 'हरपरित चिन्तामणि' लिखा।

इतिहास परक ग्रन्थों का प्रादुर्भाव इसी युग से होता है। कल्लण की 'राज तरंगिणी' जो अमोरो का प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत करती है— एक पथ प्रदर्शक ग्रन्थ है, जिसके आधार पर कल्लण ने 'सोमपाल जिलात' नामक ऐतिहासिक ग्रन्थ की रचना की, जिसमें सोमपाल का जीवनवृत्त है। इसी समय 'पुथिवोराज विषय' हेमपाल कृत 'कुमार परिणत' सोमेश्वर कृत 'कोर्ति कोमुदो— जो प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत करते हैं—लिखे गये। जिन हर्म कृत 'पट्टपाल परिणत' एवं कल्लण जिलात महाकाव्य भी प्रामाणिक ऐतिहासिक काव्य है। ऐतिहासिक काव्य न केवल राजाओं की आधार बनाकर लिखे गये, अपितु मन्त्रियों की आधार बनाकर भी लिखे गये। जैसे लक्ष्मणनन्द कृत जगदु परिणत। गोतियों का महत्त्व संस्कृत साहित्य में अत्युन्नत है जिसका प्रतिनिधि ग्रन्थ मेघदूत है। इसी की आधार बनाकर 'दूत काव्य' परम्परा प्रारम्भ हुई। इस युग में अनेक उत्तम दूत काव्य लिखे गये। जैसे धीरंड ने 'पद्मदूत' लक्ष्मणसेन ने 'शुक सन्देश' लिखा। सप्तशतियों की रचना भी इसी काल की है। गोवर्द्धन कृत 'जार्वा सप्तशती' अपने पूर्ववर्ती काल से भी बड़ा चमकदार है। इस

समय के गीतियों में एक प्रवृत्ति और मिलती है वह है शृंगार परक काव्य धार्मिक गीतों में मिलते प्रतीत होते हैं। इस विधा की प्रतिनिधि रचना जयदेव द्वारा 'गीत गोविन्द' है।

इसी तरह उपदेश परक काव्यों में सदाचार परक प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है जैसे औन्नत्य 'कर्मदास', 'चतुर्वर्ग संग्रह', 'सैव्य सैव्योपदेश' आदि।

नव के क्षेत्र में वाच की कृतियों का सर्वत्र प्रभाव है। धनपाल द्वारा 'तिलकमंजरी' और वादोभ द्वारा 'नव चिन्तामणि' में यह प्रवृत्ति स्पष्ट है।

उत्तर-पौठिका

लोक-परिभाषा और क्षेत्र

लोक-संस्कृति और उसकी व्यापकता

लोक संस्कृति के मूल तत्त्व

लोक और संस्कृत साहित्य

लोकः परिभाषा और क्षेत्र

व्याकरण की दृष्टि से 'लोक' शब्द दर्शनार्थक 'लोकृ' धातु से यञ् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। इसकी व्युत्पत्ति 'लोक्यते असौ इति लोकः' अर्थात् 'जिसे देखा जाय' वह लोक है। इस दृष्टि से सम्स्त दृश्यमान वस्तुएँ लोक-पद-वाच्य हैं, किन्तु लोक्यते अनेनेति लोकः व्युत्पत्ति के आधार पर देखनेवाला या 'देखने का साधक' लोक कहलायेगा।

भाषा वैज्ञानिक 'रुच दोप्तौ' से भी लोक को निष्पत्ति स्वीकार करते हैं, तब इसका अर्थ 'प्रकाश-सम्पन्न' होता है। किन्तु उपर्युक्त दोनों अर्थों में लोक शब्द का प्रयोग संस्कृत में नहीं मिलता। कोश ग्रन्थों में इसके अर्थ दुनियाँ, विविध लोक, पृथ्वी, मानव जाति प्रजा, समुदाय, क्षेत्र, सामान्य जीवन, लोक प्रचलन, लोग या जन, जनता, जन सामान्य का व्यवहार शास्त्रोपेत व्यवहार तोल, तात, चौदह, इक्कीस की संख्या आदि हैं, मिलते हैं।¹

वेदों में लोक :

सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में लोक शब्द का अनेक स्थलों पर प्रयोग हुआ है। भाष्यकारों ने उनका विविध अर्थ लगाया है। सम्पूर्ण वेदों के प्रतिनिधिभूत ऋग्वेद में इसका प्रयोग स्थान,² अवकाश,³ मर्त्य-लोक,⁴ देश,⁵ सुखकर,⁶ जनपद,⁷ प्रकाश,⁸ मार्ग,⁹ लोक¹⁰ आदि अर्थों में हुआ है।

1. आप्टे, वी०एस- स्टूडेन्ट्स संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी : पृ० 483-484

2. ऋ० 10:13, 10:16:4६ सभी पर सायण भाष्य

3. ऋ० 1:93:6 ता० भा०

4. ऋ० 3:2:9 माधव

5. ऋ० 5:1:6 माधव

6. ऋ० 5:4:11 ता० भा०

7. ऋ० 7:20:2

8. ऋ० 9:93:5

9. ऋ० 10:30:7

10. ऋ० 3:36:11, 6:47:8, ता०भा० 10:13:2,

यजुर्वेद में यह शब्द विभिन्न लोकों ¹ के अर्थ में तथा प्रदेश² राष्ट्र, ³ आश्रय, ⁴ देखने, ⁵ लोग, ⁶ आत्मा, ⁷ स्नानादि, ⁸ के अर्थ में प्रयुक्त है। सामवेद में यह संसार ⁹ तथा अथर्ववेद में स्थान, ¹⁰ लोक, ¹¹ प्रदेश ¹² आदि अर्थों का वाचक है।

ताण्ड्य ब्राह्मण के अनुसार लोक प्राणियों के स्थिति स्थान है ¹³ ये लोक सत्, असत् की योनि हैं और सभी कुछ इन्हीं से उत्पन्न होता है। ¹⁴ अहोरात्र, अर्धमास, ऋतु और संवत्सर के रूप में लोक ही व्याप्त है। ¹⁵ ये लोक मित्र के द्वारा सुरक्षित हैं। ¹⁶ इन लोकों की सर्प भी कहा गया है, और सर्प की निरुक्ति 'सर्पत्ति' के रूप में की गयी है, ¹⁷ जिससे प्रतीत होता है कि

1. यजु0 23:17, 31:13, 32:11, 20:25, 8:60, 9:31, 18:52, 23:43,

5:2 सभी पर महो0 मा0

2. यजु0 11:12 महो0 मा0

3. यजु0 6:6 दया0 मा0

4. यजु0 6:6, ता0 मा0 एवं महो0 मा0

5. यजु0 2:30, दया0 मा0 9:31

6. यजु0 5:26

7. यजु0 34:55 महो0

8. यजु0 35:2 महो0, 12:45 महो0, 35:1 महो0

9. साम0 पू0 प्र0 6॥3॥ द 4 मं0 10

10. अथर्व0 6:121:4, सातव0 2:9:1, ता0मा0 11:1:31, ता0मा0 18:3:8 ता0मा0

11. अथर्व0 4:34:2, 4:1:6, 3:28:6, 11:9:1

12. अथर्व0 11:1:7

13. ता0 ब्रा0 18:6:3

14. शत0 ब्रा0 7:4:1:4

15. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ 12:2:6:7: एवं 8:2:1:17,

16. एते हि इमे लोकाः मित्रगुप्ता । शत0 ब्रा0 6:5:4:4

17. इमे वै लोकाः सर्पास्ते हानेन स्वेण सर्पन्ति यदिदं किं च । शत0ब्रा0 7:4:1:25

संसार के रूप में लोक को हो दिखा गया है। जल को भी लोक को संज्ञा प्राप्त है।¹ वेद विरुद्ध या शास्त्रोपेतर परम्परा के धोतनार्थ भी लोक शब्द का प्रयोग ब्राह्मण ग्रन्थों में किया गया है।²

लौकिक संस्कृत ग्रन्थों में लोक :

संस्कृत साहित्य के आर्य महाकाव्य वाल्मीकि कृत रामायण कृमें लोक शब्द संसार,³ लोग⁴ और विभिन्न लोको⁵ के अर्थ में प्रयुक्त है। नाट्य शास्त्रीय ग्रन्थों में यह संसार,⁶ लोग,⁷ लोक,⁸ जन,⁹ या सामान्य जन¹⁰ अर्थ रखता है। व्याकरणा शास्त्र लोक को सत्ता को वेद से पृथक् मानकर उसका अर्थ शिष्ट व्यवहार करता है।¹¹ काव्य शास्त्र जो मानव प्रवृत्तियों के निरूपण का शास्त्र है, लोक शब्द का अर्थ शिष्टेतर अर्थात् 'ग्राम्य जन' करता है।¹² दण्डी के अनुसार स्थावर जंगमात्मक जगत् और उसका वृत्त लोक है।¹³ अथवा चराचर भूतों को प्रवृत्ति लोक है।¹⁴ वामन 'लोक प्रयुक्तं ग्राम्यं' कहकर लोक को

1. इमे वै लोका उखा । शत० ब्रा० 6:5:2:7
2. तदाहुः किं तत्सहस्रं । इतो मे लोका इमे वेदा अथो वागिति ब्रूयात्
3. रामायण० दि०ख० :पृ० 13, 53, 950, 948, 916, 870 : गीता प्रेस
4. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : पृ 113/46, सुन्द० श्लोक 21
5. वाल्मीकि रामायण : बुद्ध 90-56, सुन्दर सर्ग 20: पृ० 916
6. सागरनन्दो : नाट० ल०र०: पृ० 169, 259, एवं नाट्य शा०:पृ० 73:पं० 7
7. नाट्य० श्लोक : पृ० 102, श्लोक 59 : पृ० 57, श्लोक 78:पृ० 168:वा० रा०
स० 1980
8. नाट्य दर्पण §सं नगेन्द्र§ 196 § पृ० 299 हेम० काव्या०: पृ० 95/1939
9. सागरनन्दो; पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : पृ० 6 पंक्ति 1
10. लोक शब्देन शिष्ट व्यवहारो गृह्यते महा० 4
11. काव्यादर्श 9/31
12. लोकवृत्तं लोकः । लोकः स्थावर जंगमात्मा च । तस्य वर्तनं वृत्तिमिति ।
13. चराचराणां भूतानां प्रवृत्तिः लोक संज्ञिता । पूर्वोद्धृत ग्रन्थ 3/163 ।
- 14.

आभिजात्य वर्ग से दूर ग्राम्यजन के अर्थ में देखते हैं।¹ इस प्रकार संस्कृत के काव्य शास्त्रियों की दृष्टि में भारतीय बन्धन से मुक्त चराचरात्मक जगत् और उसका व्यवहार लोक है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि लोक का शास्त्रीय चैतन्य से मुक्त होना प्रथम गुण है। किन्तु संस्कृत काव्यशास्त्रियों के मस्तिष्क पर शास्त्र का घना कुहरा छाया हुआ था, अतः उन्होंने लोक को शास्त्र से पूर्व स्थान देकर उसे ग्राम्य ही कहा और वे उसकी आत्मा को पहचान न सके।

लोक संस्कृति सम्बन्धी आधुनिक विचारक भी 'लोक' का कुछ ऐसा ही अर्थ करते हैं—

डॉ० हजारो प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पौथियाँ नहीं हैं।"²

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय के शब्दों में, "जो लोग संस्कृत तथा परिष्कृत लोगों के प्रभाव से परे रहते हुए अपनी पुरातन स्थिति में वर्तमान हैं, उन्हें लोक की संज्ञा प्राप्त है।"³ डॉ० सत्येन्द्र के अनुसार, "लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है, तथा जो एक परम्परा के प्रभाव में जीवित रहता है।"⁴

डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में, "लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है। लोक कृत्स्न ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है, अर्वाचीन मानव के लिए सर्वोच्च प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री, सर्वभूत माता पृथिवी और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे जीवन का अध्यात्म शास्त्र है।"⁵

1. काव्यादर्श। पूर्वोक्त

2. जनपद धर्म। अंक 1 : पृ० 65

3. उपाध्याय, कृष्णदेव : लोक साहित्य की भूमिका : दि० सं० : पृ० 13

4. सत्येन्द्र : लोक साहित्य विज्ञान : प्र० सं० : पृ० सं० 3

5. सम्मेलन पत्रिका § लोक संस्कृति विशेषांक § : पृ० 65:प्र० सं०

लोक संस्कृति और उसकी व्यापकता :

लोक की व्यापकता के सम्बन्ध में उसकी व्याप्ति इस लोक तक ही नहीं अपितु भू-मण्डलेतर लोक तक है। अतः उसकी संस्कृति का विस्तार भी लोक विस्तार से सम्बन्धित है, किन्तु जब हम आज लोक संस्कृति की बात करते हैं, तो हमारा अभिप्राय इस विस्तृत लोक के सम्पूर्ण स्वरूप से न होकर, उसके एक देश अर्थात् शिष्टेतर या शास्त्रीय चैतन्य से मुक्त सामान्य मनुष्य से है जो संसार के कोने-कोने में फैला हुआ है। लोक संस्कृति से हमारा तात्पर्य ऐसे ही सामान्य जन की उन परम्पराओं रीति रिवाजों धार्मिक विश्वासों आदि के अध्ययन से है जो मूल रूप से मानव की आदिम युगीन प्रवृत्तियों से सम्बन्धित थी, जिन्हें हम अधिकृत या अर्द्ध विकसित संस्कृति का रूप मानते हैं तथा जो मानव समाज के शिष्टतम वर्ग में भी कुछ सीमा तक पाई जाती है। पाश्चात्य विद्वानों ने इस सन्दर्भ में 'लोक लोर' शब्द का प्रयोग किया है। यह शब्द 'लोक' और 'लोर' दो शब्दों से निर्मित है। 'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति ऐंग्लो सेक्सन के शब्द लोक से हुई है। संस्कृत में इसके लिए 'लोक' या 'जन' शब्द है। 'लोर' शब्द 'लार' से बना है जिसका अर्थ ज्ञान होता है। इस तरह इसका अर्थ 'असंस्कृत जन की संस्कृति' है, किन्तु 'उच्चवर्गीय समाज में भी लोक संस्कृति के तत्त्व निहित रहते हैं'।² इस तरह यह सामान्यजनों में मिलती है और उनके दैनिक जीवन, उनके विश्वास प्राकृतिक शक्तियों से उनकी समीपता, उनके निश्चल आदलाद एवं सहज दुःखानुभूति से सम्बन्धित है।³

लोक-लोर के जन्मदाता विलियम जोहन थामस के अनुसार इस शब्द से 'पापुलर एण्टिक्विटीज' का बोध होता है। वह 'पापुलर एण्टिक्विटीज' तथा 'पापुलर लिटरेचर' में कोई अन्तर नहीं समझता था। 'वस्तुतः यह कहना

1. न्यू स्टैण्डर्ड इन साइक्लोपीडिया : वोल्यूम 6 : पृष्ठ 233

2. इन साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका : वोल्यूम 4 : पृष्ठ 863

3. न्यू स्टैण्डर्ड इन साइक्लोपीडिया : वोल्यूम 6 : पृष्ठ 233

असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है कि लोक लोर का क्षेत्र कहाँ समाप्त होता है।¹ और कहाँ से सामान्य साहित्य प्रारम्भ होता है। लेकिन इस शब्द का प्रयोग धीरे-धीरे बदल गया। आज सामान्य जन जीवन से सम्बन्धित सभी प्रकार की अभिव्यक्तियों और परम्पराओं का समावेश इसको परिधि में हो चुका है। प्रारम्भ में मानवीय विवातों और प्रथाओं को ही लोक लोर को सीमों में स्थान मिला था, किन्तु बाद में उसको परिधि के विशाल घेरे ने लोक गीतों- लोक कथा, लोक संस्कृति तथा लोकोक्तियों को भी अपने में समेट लिया।² वास्तव में 'लोक लोर' जिसका साहित्यिक रूपान्तरण लोक ज्ञान है, सामान्यतः ऐसे ज्ञान तक सीमित है, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक मौखिक या अनुकरण के माध्यम से संचरण करता है, ऐसे समाज में जो लेखन कला से शुन्य सभी पारम्परिक ज्ञान लोक लोर समझे जा सकते हैं। लेकिन शिक्षित समाज में जैसा कि हमारा कथन है लोक लोर सम्पूर्ण संस्कृति के एक हिस्से को ही संदर्भित करता है। मुख्यतः वह लोक संगीत, लोक कला, लोक रीति, लोकोपधि के साथ कथारं, पुराकथारं, देवकथारं और लोक कथावतों को स्वयं में समाहित करता है।³ श्रीमती सोफियाबर्न के अनुसार इसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के अलंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट विवात, रीतिरिवाज, कहानियाँ, कथावतें तथा गीत आते हैं। प्रकृति के धेतन तथा जड जगत् के सम्बन्ध में भूत प्रेतों की दुनियाँ तथा उनके साथ मनुष्यों के सम्बन्धों के विषय में जादू-टोना, सम्मोहन क्रीकरण, ताबोज, भाग्य, शकुन, रोग और मृत्यु के सम्बन्ध में आदिम तथा असम्य विवात इसके क्षेत्र में आते हैं और विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल, प्रौढ़ जीवन के रीति-रिवाज, अनुष्ठान और त्यौहार, युद्ध आघात और मत्स्य व्यवसाय, पुत्रपालन आदि के

1. पूर्वोक्त ग्रन्थ: न्यू स्टैण्डर्ड इन साइक्लोपीडिया, वॉ 6 : पृ0233

2. डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटरेचर : पृ0 242

3. लेजिस्लेशन यूनिवर्सल इन साइक्लोपीडिया : जिल्द 8 : पृ0 203

विषयों के रीति रिवाज और अनुष्ठान इसमें आते हैं। धर्म गाथाएँ अवदान, आख्यान, लोक कहानियाँ, साके {बैलेड} गीत किम्बदन्तियाँ, पहेलियाँ, लोरियाँ भी इसके विषय हैं। संक्षेपतः लोक की मानसिक सम्पन्नता के अन्तर्गत जो भी वस्तुएँ आ सकती हैं, वे भी इसके क्षेत्र में हैं।¹ सोफियावर्न के इस मत का निष्कर्ष निकालते हुए डॉ० कृष्ण देव उपाध्याय ने लिखा है कि उसने फोक लोर को तीन समूहों में बाँटा है:

1- लोक विश्वास एवं अन्य परम्पराएँ

2. रीति रिवाज तथा प्रथाएँ

3. लोक साहित्य

प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत पृथिवी, आकाश, वनस्पति जगत्, पशु, जगत मानव तथा उसके द्वारा निर्मित वस्तु, आत्मा तथा परलोक, परमानवी सम्बन्धित लोक विश्वास व परम्पराएँ,

द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत सामाजिक, राजनैतिक संस्थाएँ व्यक्तिगत जीवन के अधिकार, व्यवसाय, उद्योग धन्धे, मृत त्यौहार आदि के सम्बन्ध में प्रचलित रीति रिवाज, और तीसरी श्रेणी में लोकगीत, कथा, कहावत पहेलियाँ, बच्चों के खेल के गीत आदि आते हैं।

इस प्रकार सम्पूर्ण लोक संस्कृति उपर्युक्त तीन वर्गों में विभाजित की गयी है।² डॉ० सत्येन्द्र का भी इस सन्दर्भ में यही मत है। उनके अनुसार फोक लोर का क्षेत्र और भी विस्तृत हो चुका है। उन्होंने इसको परिधि को विस्तृत करने का भी प्रयत्न किया है।³

मोलानाथ तिवारी फोक लोर को कला, विश्वास एवं अनुष्ठान इन तीन वर्गों में विभाजित करते हैं।⁴

1. डॉ० सत्येन्द्र : मूल लोक साहित्य का अध्ययन : पृ० 4-5

2. उपाध्याय, कृष्णदेव : लोक संस्कृति की भूमिका : दि०सं०: पृ० 22-23

3. सत्येन्द्र : लोक साहित्य विज्ञान : पृ० 33-34

4. तिवारी, मोलानाथ : सम्मेलन पत्रिका { लोक संस्कृति विशेषांक } पृ० 423

वास्तव में लोक लोर कितना व्यापक है उसका निर्धारण कठिन है। यह एक जोषित शास्त्र है। लोक का जितना जोषन है, उतना हो लोक वार्ता का विस्तार है।¹

लोक संस्कृति के मूल तत्त्व :

लोक संस्कृति का आधार, शास्त्रीय ज्ञान की पोथियों में नहीं रहता, अपितु विभिन्न समाजों के वृद्धजन, जिनमें पुरुष और स्त्रियाँ दोनों सम्मिलित हैं, हुआ करते हैं। वृद्ध पुरुष जहाँ लोक संस्कृति के संरक्षक होते हैं, वही वृद्ध स्त्रियाँ उसकी संवाहिका और निर्देशिका, दोनों का उत्तरदायित्व सम्भालती हैं। वस्तुतः मानव जीवन के कोई भी महत्वपूर्ण अवसर हों, वृद्धास्त्रियों का उनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंशदान रहता है। यह अंशदान उन वृद्धा स्त्रियों के न केवल दीर्घ कालीन अनुभव का प्रतिफल होता है, अपितु उनके आस्थाओं और विश्वासों का प्रतीक भी है। शास्त्रकारों ने भी स्त्रा वचन के रूप में उन्हें प्रामाणिकता प्रदान की, और समाज के वृद्धजनों ने उसे 'बुद्धिया पुराण' के रूप में स्वीकार किया।

लोक संस्कृति में तर्क और विचारणा का कोई स्थान नहीं है। यहाँ केवल विश्वास, जिसे शिष्टजन अन्ध-विश्वास कहते हैं, का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। आस्था श्रद्धा निष्ठा इसी विश्वास के विभिन्न रूप हैं। भय, आश्चर्य और विश्वास की त्रिवेणी, लोक-संस्कृति का वह पवित्र संगम है, जिसमें स्नान करने के बाद तर्क का झंझट समाप्त हो जाता है और लोक मानस नितान्त निर्मल हो जाता है।

लोक संस्कृति का आवास सामान्यतया कल कारखानों के धूरें से सदैव आच्छादित रहनेवाले बड़े-बड़े शहरों के विशाल भवनों में नहीं अपितु कल कारखानों में काम करनेवाले मजदूरों के हृदय में होता है, जो सारे दिन धर्म और आस्था की धता बतानेवाली दैत्याकार मशीनों से जूझने के बाद शाम को टूटी-फूटी

झोपड़ियों में फटे-हाल अपने बच्चों के बीच में जाकर रात गुजारता है। यद्यपि कभी-कभी शिष्टातिशिष्ट व्यक्तियों के बीच भी इस लोक-संस्कृति का आभास होता है, किन्तु वह प्रायः निर्माणाधीन विनाश भवनों पर लटके हुए फटे जूतों अथवा सिन्दूर या काली राख से लगायी गयी टिकुलियों से युक्त हाँड़ी के रूप में या नन्हें-मुन्ने को बुरी नजर से बचाने के लिए विविध प्रकार के टोने और टोटकों के रूप में दिखाई देता है। विवाह और पुत्र मनुष्य के लिए भोजन और सुरक्षा के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्राथमिकताएँ हैं। स्त्री प्राप्ति के लिए विभिन्न प्रकार के जादू एवं टोने तथा पुत्र प्राप्ति एवं सुरक्षा के लिए सम्यतम् समाज में इसी प्रकार के उपाय आज भी अपनाये जाते हैं। कहावत है-“जो होंगे पूत तो पूजने पड़ेगें भूत।”

लोक संस्कृति को परम्परा मौखिक एवं वंशानुगत परम्परा से निरन्तर आगे बढ़ती रहती है। उसमें लिखित ग्रन्थों का कोई स्थान नहीं होता।

लोक संस्कृति व्यक्तिवादो संस्कृति नहीं है। उसमें व्यक्ति का नहीं समष्टि का कल्याण सन्निहित रहता है। यही कारण है कि लोक गीतों या लोक साहित्य-अन्यविधा में उसका लेखक नितान्त अज्ञात रहता है, और यदि कहीं सामयिक लोक साहित्य में उसका नाम भी समाविष्ट हो गया तो जन मानस थोड़े ही दिनों में उसे दूसरे नाम से उसे स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार एक ही कविता देश-काल के भेद से भिन्न-भिन्न कवियों और भिन्न-भिन्न पात्रों के नाम से संयुक्त हो जाती है।

यद्यपि लोक संस्कृति शिष्ट संस्कृति से बहुत कुछ ग्रहण करती है, किन्तु केवल उतने ही अंश को, जो अंश स्वयं शिष्ट संस्कृति में किसी समय लोक-संस्कृति से ग्रहण किया गया होगा।

लोक संस्कृति वाह्याडम्बरों से शून्य कर्मकाण्ड के जटिल प्रावधानों से रहित ‘पत्र पुष्पं फलं तोयम्’ की भावना पर टिकी हुई है। उसमें अदृष्ट शक्तियों के सम्भावित विपरीत प्रभाव से बचने के लिए विभिन्न प्रकार के जादू-टोना, टोटका अमोघ अस्त्र हैं। वस्तुतः यही लोक संस्कृति के वे तत्त्व हैं, जो

उसे निरन्तर जीवन प्रदान करते हैं।

लोक और संस्कृत साहित्य :

शास्त्रीय चैतन्य से युक्त संस्कृत विज्ञ अर्थियों ने भी लोक की कभी उपेक्षा नहीं की। वे यह जानते थे कि इस पृथिवी पर विभिन्न भाषा बोलनेवाले नाना धर्मों के अनुयायी जन रहते हैं।¹ लोक इन्हीं जनों के माध्यम से पैदा हुआ है। यह लोक इतना विविध और व्यापक है कि सम्पूर्ण प्रयत्न करके कौन इसे जान सकता है ?² इसीलिए वेदव्यास ने लोक का प्रत्यक्ष दर्शन करनेवाले को 'सर्वद्रष्टा' कहा है³ कदाचित् ईश्वर का 'सर्वद्रष्टात्व' इसी तथ्य पर अधृत है।

लोक सम्पूर्ण शास्त्रों का स्रोत है। सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान लोक में ही निहित है। शास्त्र अपनी सामग्री का चयन लोक से ही करता है और जब यही लौकिक सामग्री शास्त्रीय स्वरूप धारण कर लेती है तब लोक के लिए प्रमाण बन जाती है। इस तरह संसार का सम्पूर्ण व्यवहार 'लोक से शास्त्र' और 'शास्त्र से लोक' के आवागमन के चक्र में चलता है। इस लोक की महत्ता को विभिन्न साहित्य-शास्त्रीय ग्रन्थों में स्पष्टतया स्वीकार किया गया है।

महामारत में सभी प्रकार के ज्ञानार्जन के लिए परम्परा को 'सर्वोत्तम साधन' कहा गया है।⁴ यह परम्परा लोकाश्रित होती है। इसीलिए इसे लोक परम्परा कहा गया है निरुक्त⁵ में ऐसे व्यक्तियों को 'पारोक्ष्यविद' कहा गया है। परम्परा के ज्ञान के अभाव में बहुश्रुत नहीं बना जा सकता। गौतम धर्म सूत्र में बहुश्रुत बनने के लिए वेद, वेदांग वाक्य और पुराण के साथ सर्वप्रथम लोक ज्ञान को आवश्यक बताया गया है।⁶ मनु का कथन है, 'वार्ता' अर्थात्

1. जनं विप्रतो बहुधा विवाचसं नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम्, अथर्व० 15:1:45
2. बहु व्याहितो यं बहुशी लोकः । क एतदस्य पुनरो हतोऽप्यात्, जै० मि० ब्रा० 3:28
3. प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्व दर्शी भवेन्नरः । महा० उद्योग० 43/36
4. पारम्पर्येण बौद्धव्यं ज्ञानानां यच्च किंचन : महा० शा० 48:333
5. निरुक्तम् 1/3/12
6. गौतम धर्मसूत्र : 8/4/6

आजोषिका के समस्त साधनों को जानकारी लोक-व्यवहार से प्राप्त करनी चाहिए।¹ लोक-व्यवहार को जाननेवाले व्यक्तियों को लोक्यात्राविद² लोकतन्त्रविचक्षण,³ लोकवृत्तान्तनिष्णात,⁴ लौकिकज्ञ⁵ और लोकज्ञ⁶ कहा जाता था। वस्तुतः अभिजात वर्ग के लिए 'लोकज्ञान'⁷ कला के रूप में अध्येय था।

इतिहास और पुराण के विस्तृत वाङ्मय का विवेचन भी लोकवृत्त⁸ है। लोक प्रसिद्धि ही उन्हें पृथक्-पृथक् वाङ्मय के रूप में प्रस्तुत करती है।

व्याकरण जैसा शास्त्र भी हमेशा लौकिक व्यवहारों का अनुसरण करता है, जो लोक में व्यवहृत होता है, शास्त्र में उसी का अनुसरण किया जाता है।⁹

राजन्योतिशास्त्र में लोक व्यवहार को असामान्य महत्त्व देकर शुक्र ने स्पष्ट घोषणा की—“अस्वर्ग्य स्यात् धर्ममपि लोकविगर्हितं तु यत्।” धर्मशास्त्रीय कर्मकाण्ड और संस्कारों में भी लोक व्यवहार अथवा लोकाचार को महत्त्वपूर्ण माना गया। नामकरण, चूडाकर्म, विवाह और मृत्यु जैसे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संस्कारों में सभी धर्मशास्त्र एवं गृह्यसूत्र कुल परम्परा के निर्वाह को व्यवस्था देते हैं। आश्वलायन गृह्य सूत्र के अनुसार विभिन्न देशों और विभिन्न ग्रामों में जो विभिन्न आचार हैं उनका पालन धार्मिक कार्यों में करना चाहिये।¹⁰ विवाह की विधि एवं शिष्टाचार का पालन करने के लिए वेद या शास्त्र नहीं अपितु

1. मनु० 7/43

2. अथर्ववेद 1/1/3

3. महा० आर० 159/1 शान्ति पर्व 174/4

4. अभिज्ञान ० पंचम अंक

5. वही,

6. धूर्तविट संवाद : पृ० 75

7. कामसूत्र 1/3/15 पर जयमंगला

8. लोक वृत्त मिति इतिहास पुराणस्य विषयः नायय-सूत्र ।

भा०

9. शास्त्र हि लौकिक व्यवहारान् अनुसरति । यत्लोक्ये व्यवहृत्यते तच्छास्त्रेऽपि महामाष्ये

10. आश्वलायन : गृ० सू० 1/7/1

स्त्रियों को प्रमुख प्रमाण माना गया है।¹ साहित्य जगत् में लोक और लोक व्यवहार को सर्वाधिक महत्त्व पूर्ण स्थान दिया गया है। वामन ने काव्य के तीन अंगों में लोक को प्रथम स्थान दिया है।² मम्मट काव्य हेतुओं का परिगणन करते हुए लोक नैपुण्य को नहीं भूलते हैं।³ राजशेखर ने लोक को काव्यार्थ के सोलह मूलों में गिना है।⁴ आचार्य भरत नाट्य-प्रयोग में लोक को ही प्रमाण मानते हैं।⁵ आचार्य हेमचन्द्र ने काव्य में लोकमूलरता को स्वीकार किया है,⁶ वे प्रकृति व्यत्यय नामक रस दोषों में अनेक रस दोषों⁷ को तथा अनेक व्यभिचारों भावों⁸ को लोक मूलक बताते हैं।

अनेक छन्दों का नामकरण जैसे शार्दूल विक्रीडित, भुजंग प्रयात, गोमूत्रिका बन्ध उनको लोक मूलकता को सिद्ध करता है। इसी प्रकार चर्यारो,⁹ रत्नोके,¹⁰ संवाद,¹¹ दवावैत¹² हियाभिया¹³ आदि का प्रयोग आज भी लोक जीवन में मिलता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि संस्कृत जगत् में अतिप्राचीन काल से ही लोक का महत्त्वपूर्ण स्थान था, तथा उसके अध्ययन की स्वतन्त्र मान्यता था।

1. आश्वत्थामन गृ० तु० 1/14/8
2. काव्यादर्श 1/31
3. काव्य प्रकाश 1/3
4. काव्य मोमांसा : अध्याय 8
5. लोकसिद्धं भवेत्सिद्धं नाट्य लोक स्वभावजम्
तस्यात् नाट्य प्रयोगे तु प्रमाणं लोकमुच्यते। नाट्या० 26/132
6. लोक शास्त्र काव्येषु निपुणता व्युत्पत्तिः काव्या० : पृ० 7 वृत्तिभाग/1938
7. हेमचन्द्र : पूर्वोद्धृतग्रन्थ : पृ० 174 वृत्तिभाग
8. पूर्वोद्धृतग्रन्थ : पृ० 132 से आगे
9. नाहटा, अगरचन्द : प्राचीन काव्यों की रूप परम्परा : पृ० 107
10. अगरचन्द्र : पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : पृ० 128-29
11. अगरचन्द्र : पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : पृ० 107-108
12. अगरचन्द : पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : पृ० 136
13. अगरचन्द : पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : पृ० 146

अध्याय - 1

वत्सराज के रूपकों की कथावस्तु और उसका उपजीव्य

रूपकों की कथावस्तु एवं उसका उपजीव्य

किरातार्जुनीयम् व्यायोग :

किरातार्जुनीयम् व्यायोग की कथावस्तु पौराणिक उपाख्यानोँ पर आधारित है। वत्सराज ने महाभारत के वन पर्व तथा किरातार्जुनीयम् महाकाव्य से कथा को ग्रहण कर किंचित् परिवर्तनों के साथ इस व्यायोग को अभिनेय बनाया है। जिसका मंचन सर्वप्रथम कालिंजराधिपति त्रैलोक्य वर्मदेव की आज्ञा से हुआ। नायक अर्जुन के रंगमंच पर तपश्चरणा के दृश्यांकन से अभिनय प्रारम्भ होता है। इस एकांकी में प्रथमतः अम्बिका की स्तुति है। सूत्रधार के पूछने पर स्थापक शिव सम्बन्धी नान्दो पाठ का आदेश देता है। जो त्रिशूल को आधार बनाकर किया जाता है। स्थापक अभिनय के सम्बन्ध में अपने महाराज का आदेश सुनाता है, जिसे सुन सूत्रधार कहता है कि महाराज के मन को करवाल लता हो आनन्दित करती है। कान्ता नहीं। स्थापक अभिनय वेलार्थ सूत्रधार को रात्रिकाल उचित बताता है एवं श्लेषमय रूपक से अर्जुन के द्वारा शत्रु विनाश की चर्चा करता है। नेपथ्य में हिमालय पर तपस्यारत अर्जुन तथा व्यास प्रेषित अनुचर सिद्धादेश का वार्तालाप सुनायो पड़ता है।

सिद्धादेश साफल्यार्थ सम्पूर्ण अभिलषित वस्तुओं के रहते हुए भी अर्जुन से विमनस्कता हेतु पूछता है। वह कहता है मेरे वैमनस्य को इस प्रकार शान्ति कहाँ ? वह अपने धनुष धारण को तबतक व्यर्थ मानता है, जब तक युधिष्ठिर कौरवों के बलवान कबन्धों के नृत्य से नयनों का सुख नहीं पाते। सिद्धादेश अर्जुन के खेद को दूर करने के लिए सान्त्वना देता हुआ ऐन्द्रजालिक पुस्त्यों की भाँति उससे कहता है कि जादू से उत्पन्न पुस्त्य को भाँति दिखायो देते हुए तुम्हारे शत्रु नहीं रहे। इस समय युधिष्ठिर हो राजा हैं। अर्जुन स्वतपश्चरणा का हेतु गुरुजनादेश कहता है। इसी मध्य आकाश से उतरते हुए अप्सराओं के विमान दिखायो देते हैं। वह नारियों पर बाण चलाना त्याज्य समझ उनसे अपने को विरत रखने के लिए बाणों का पितान {तम्बू} तान कर उन्हें लौटने के लिए विव्हा कर देता है, किन्तु सूर्यबिम्ब दर्शन हेतु चतुर चीरों द्वारा बनायो

गयी सेंध को तरह एक छेद रख छोड़ता है।

नेपथ्य में सिद्धादेशा उसके शर-सन्धान को प्रशंसा करता है अर्जुन के तपश्चरण से प्रसन्न मुनिवेषधारी महेन्द्र उपस्थित होकर धनुष- निखिंग के साथ वल्कल और अध माला धारण कर तपः प्रवृत्ति लोक विरुद्ध बताते हैं तथा दोनों में से एक को धारण करना श्रेयस्कर कहते हैं स्वयं के प्रति तात्पर्य शब्द का सम्बोधन सुन इन्द्र संदिग्ध पदावली का प्रयोग करते हैं। अर्जुन तपश्चरणा का कारण गुरुजनादेश बताता है वह महेन्द्र से कहता है कि आप ने पराभव का दुःख नहीं भोगा है आपका वचन अनुसंधनीय है अतः बार-बार ऐसा न कहें मैं आत्मारूप वाण से भेदकर प्राप्त होनेवाली मुक्ति चाहता हूँ कर्म और ज्ञान के समुच्चय से उत्पन्न को नहीं। अर्जुन को इस प्रकार की भावना को समझ इन्द्र वास्तविक स्वरूप में आ जाते हैं महास्त्र प्राप्ति हेतु शिवाराधन का आशीर्वाद दे अन्तर्ध्यान हो जाते हैं।

नेपथ्य से शूकर को कुदाल से दाढ़ जो शाखाओं पर कुल्हाड़े से ऊँची शाखाओं पर फरसे जैसा कार्य करती है के आगमन की सूचना दी जाती है सिद्धादेशा के द्वारा निर्देशित अर्जुन शूकर के शरीर रूपी कुटी को नष्ट करने के लिए जैसे ही वाण चलाता है उसी समय एक दूसरा वाण वराह के शरीर में लगता है अर्जुन भरे हुए शूकर के शरीर से अपना वाण लेना चाहता है, किन्तु किरात द्वारा छोड़े गये वाण को अपना बाण समझकर लेना चाहता है। सिद्धादेशा और अर्जुन की इस वार्ता के मध्य एक व्यक्ति अर्जुन से पूछता है कि छोड़े गये वाण से पीड़ित शूकर को मूर्च्छाजन्य उछल-कूद से आप पीड़ित तो नहीं हुए।

कण्ठोरव उस पुरुष से शूकर कथ मुनि कृत बताता है। आक्षेप युक्त उसके वचनों से अर्जुन ग्लानि का अनुभव करता है वह किरात जाति को निन्दा करता है इसी समय किरातों की सेना आ जाती है। सेनापति हरकिरात बाण ग्रहण की चेष्टा करनेवाले मुनि को पूछता है परस्पर वाद-विवाद होने पर दोनों में युद्ध छिड़ जाता है अनन्तर हरकिरात दुर्योधन का रूप धारण कर लेता है वह क्षत्रियोचित कर्म छोड़कर तपः प्रवृत्त अर्जुन का उपहास करता है जैसे ही दोनों युद्ध में भिड़ते हैं शिव अपने वास्तविक स्वरूप में आ जाते हैं वे उसे महास्त्र प्रदान कर आशीर्वाद देते हैं।

कवि वत्सराज ने मुस्लिम आक्रमण से जूझते हुए चन्देल राज्य में राष्ट्रीय भावना का जागरण करने के लिए महाभारत के वनपर्व में आये इस उपाख्यान को तथा भारवि के किरातार्जुनोयम् से कथानक लेकर पर्याप्त नाटकीय परिवर्तनों के साथ इस व्यायोग की कथा वस्तु को रंगमंच पर प्रस्तुत किया।

महाभारत में व्यास के आगमन के बाद काम्यक वन जाते हैं अर्जुन अपने भाइयों से मिलकर इन्द्रकोल पर्वत पर जाते हैं युधिष्ठिर अर्जुन को अस्तिस्मृति विद्या के बारे में बताते हैं अर्जुन धौम्य के साथ धनुष तलवार सहित जाते हैं। तपस्या करते हुए इन्द्र कोल पर धनुष वाण के सम्बन्ध में आकाशवाणी सुनते हैं। उन्हें दृढप्रतिज्ञा जान इन्द्र प्रकट होते हैं वर के रूप में वे दैवी अस्त्र-शस्त्र माँगते हैं वे शिवाराधन के लिए कहते हैं वे हाथ उठा अँगूठे पर खड़े होकर तपस्या करते हैं अधिगण उनके तपस्या के बारे में बताते हैं उसी समय मूक शूकर के रूप में आता है किरात और अर्जुन दोनों एक ही लक्ष्य शूकर पर वाण चलाते हैं। मरे हुए शूकर पर वाण मारने के प्रश्न को लेकर झगड़ा होता है जो क्रमशः धनुष, तलवार और मुष्टि युद्ध में बदल जाता है। अत्यन्त घायलावस्था में अर्जुन शंकर की मूर्ति बनाते हैं तथा उसके गले में माला डालते हैं जो शंकर के गले में पड़ती है अर्जुन उन्हें पहचान जाते हैं तदनन्तर पारुषत को प्राप्ति होती है।

भारवि कृत किरातार्जुनोयम् महाकाव्य में जुस में हारकर दैतवन में रहते हुए दुर्योधन की राज्य व्यवस्था की जानकारी के विषय में ब्रह्मचारि केधारी वनेश्वर को भेजते हैं जो सम्पूर्ण समाचार युधिष्ठिर को बताता है उस समाचार को युधिष्ठिर छोटे भाइयों से बताते हैं उसी समय वेद व्यास वहाँ आकर युद्ध करना आवश्यक बताते हैं, जिसके लिए अर्जुन को तप करना होगा। वे तपोविधि अर्जुन को बताकर अन्तर्धान हो जाते हैं उसी समय निर्दिष्ट यक्ष आता है। गमनोद्यत अर्जुन को द्रौपदी अनेक प्रकार से समझाती हैं यक्ष द्वारा निर्दिष्ट मार्ग के अनुसार अर्जुन इन्द्रकोल पर्वत पहुँचते हैं शरद की शोभा देख प्रसन्न हो जाते हैं अनन्तर हिमालय पर पहुँचते हैं वहाँ पर यक्ष अर्जुन को तपस्या करने का

उपदेश देता है। अर्जुन को कठिन समस्या से भयभीत यह वनेचर सहाय्यार्थ इन्द्र के पास जाते हैं। इन्द्र रतदर्थ गन्धर्वों एवं अमरांगनाओं को भेजते हैं। इन्द्र से आदेशित वे वाहन एवं सेवकों सहित जाकर बहुविध उद्यान झोड़ा एवं जल झोड़ा के पश्चात् सुसंयमी अर्जुन को तप से विरत करने का प्रयत्न करती हैं किन्तु वे सफल नहीं होती हैं अनन्तर मुनिवेषधारी आगत इन्द्र अर्जुन से शस्त्र धारण करना अनुचित बताते हैं जिसके उत्तर में लक्ष्य प्राप्ति या मृत्यु का विनिश्चय अर्जुन सुनाते हैं प्रकट हो इन्द्र शिवाराधन का उपदेश दे अन्तर्ध्यान हो जाते हैं। पुनः अर्जुन के भयंकर तपश्चरणा के विषय में शिव से मुनिगण बताते हैं शिव उन्हें किष्कु का अंशावतार बताते हैं जो संसार के कल्याणार्थ तप कर रहा है। देव कार्य का साधन जान मूक दानव वराह रूप धारण कर अर्जुन को मारना चाहता है उसके रक्षार्थ किरातों को साथ ले किरातवेषधारी शंकर उनके पीछे दौड़ते हैं। अर्जुन और शिव एक साथ उस पर वाण चलाते हैं शिव का वाण पृथिवी में चला जाता है। वाण प्राप्ति के लिए शिव के गण और अर्जुन में वाद-विवाद बढ़ जाता है गण शिव के पास चला जाता है। वे युद्धार्थ अपनी सेना भेजते हैं। अर्जुन को वाण वर्षों से सम्पूर्ण सेना मूर्च्छित हो जाती है। बची सेना भाग जाती है पुनः शिव और अर्जुन में भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो जाता है दोनों एक दूसरे के वाणों को काट देते हैं। अस्त्र-शस्त्रहीन घट्टानों से युद्ध करते हैं जो मल्लयुद्ध में बदल जाता है। रक्त से सने शिव आक्रमण के लिए उछलते हैं उसी समय अर्जुन उनका पैर पकड़ लेते हैं जिससे शिव अपने वास्तविक स्वरूप में आ जाते हैं। प्रसन्न शिव उन्हें धनुर्वेद की शिक्षा देते हैं। शिवाज्ञा से इन्द्रादि अर्जुन को दिव्यास्त्र प्रदान करते हैं।

महाभारत का उपजीवक भारवि कृत किरातार्जुनीयम् महाकाव्य ही इसका व्यायोग की कथा का मुख्य स्रोत है।

रुक्मिणी हरण :

चार अंकों का ईहामुग है। इसका कथानक रुक्मिणी के पूर्वराग से प्रारम्भ होकर युद्धान्त पर समाप्त हो जाता है। सूत्रधार शिव और कृष्ण

से सम्बन्धित नान्दी पाठ के बाद सामाजिकों के आदेश से ईहामुग के अभिनय की सूचना देता है तथा शीघ्रता के लिए परिजनों को आदेश देता है नेपथ्य से क्रुद्ध अकूर को वाणी सुनाई पड़ती है।

प्रस्तावनापरान्त वे रंगमंच पर प्रवेश करते हैं तथा शिशुपाल की रुक्मिणी के प्रति आसक्ति एवं विवाह की तैयारी, रुक्मिणी का कृष्ण के प्रति प्रेम एवं कृष्ण के प्रति सन्देश, रुक्मिणी के प्रति कृष्ण के प्रेम और शिशुपाल के प्रति अपने क्रोधभाव की चर्चा करते हैं। अकूर क्रोध युक्त राम कृष्ण को देखकर प्रतिहारो से कारण पूछते हैं उत्तर में वह कृष्ण के प्रति रुक्मिणी के वैरभाव की चर्चा करता है। वह बाह्य व्यक्ति द्वारा रुक्मिणी के पराक्रम तथा कृष्ण के प्रति की गयी युद्धाकांक्षा का भी वर्णन करता है। अकूर प्रतिहारो से कहता है कि बकरा बकरे को बड़े अभिमान से ललकारता है किन्तु सिंह को देखकर कायर बन जाता है। अतः मुझे विश्वास नहीं है।

नेपथ्य से कौण्डिन्यपुर से आगत प्रियम्बद के बारे में सूचित किया जा रहा है। प्रतिहारो के साथ प्रवेशकर प्रियम्बद बिना कुछ कहे मुँह लटकाकर खड़ा हो जाता है। बार-बार आग्रह करने पर वह शिशुपाल एवं रुक्मिणी का पत्र देता है अकूर द्वारा पढ़े जाते हुए दोनों पत्र सुनकर बलराम क्रुद्ध हो युद्धार्थ दुन्दुभि बजाने का आदेश देते हैं, जिसे कृष्ण असमयोचित एवं अनुचित बताते हैं। मन्त्रणोपरान्त युद्ध का निश्चय किया जाता है। विवाहावधि पर्यन्त बलराम मय न पीने का निश्चय करते हैं अनन्तर रात्रि हो जाती है।

द्वितीय अंक में दीपक से प्रियम्बद बलराम के जगने की बात पूछता है वह कहता है कि वे रात भर नहीं सोये। उन्होंने ही मुझे कृष्ण के पास प्रस्थानार्थ भेजा है। सभाभवन में चर्चा में व्यस्त कृष्ण, उदय, सात्यकि और अकूर के मध्य वह बलराम के सन्देश को सुनाता है। इसी मध्य वहाँ पहुँचते हुए बलराम के बैठ जाने पर लोक मर्यादा के पालनार्थ उदय ज्योतिषियों को बुलवाते हैं।

युद्धोपरान्त यहाँ पर कृष्ण का रुक्मिणी के साथ विवाह हो-रेखा बलराम अभिमत प्रकट करते हैं। उदय उन्हें साथ लेकर चलने की बात करते हैं। अघानक

माता पिता के आगमन को शुभ-शकुन समझ कौण्डिन्यपुर में विवाह में सम्मिलित होने को आज्ञा राम और कृष्ण प्राप्त करते हैं। विजया को भोज देवकी सन्धानक को बुलवाती है। वह कृष्ण को रत्न माला प्रदान करता है जिसे शुभ शकुन समझा जाता है।

नेपथ्य में मालाकार गुँथी हुई माला को स्पर्श करनेवाले को डाँट रहा है। अनन्तर उस माला को कृष्ण को देता है। उद्विग्न विवाह यात्रा के पूर्व उसे शुभ शकुन बताते हैं षष्ठदेव के पूछने पर सन्धानक वैशाख में विवाह की बात बताता है। कोषाध्यक्ष को पारितोषिक सम्बन्धी आदेश प्रदान कर अक्षर सन्धानक को बिदा कर देते हैं प्रस्थानार्थ सभी अपने-अपने भवनों में जाकर तैयार होते हैं।

तृतीय अंक में सुबुद्धि रंगमंच पर प्रकट हो, 'कन्या होना बहुत बड़ा अपराध' कहती है। रुक्मिणी के प्राणों के विनाश की आशंका से अपना जीवन एवं पार्ष्वती के मन्त्र शक्ति को व्यर्थ मान रही है। बारात में कृष्णागमन की आशा की डोर मात्र समझ रही है। रुक्मिणी के कक्ष में गमनोद्यत सुवत्सला उसे मिल जाती है जो उससे बताती है कि रुक्मिणी का जीवन आशा रूपी हिंडोले पर झूल रहा है। रुक्मिणी का सुन्दर चित्र ले कृष्ण के सन्निधि में कृत-निश्चय हो रंगमंच से निकल जाती है।

कृष्ण का चित्र लिए हुए रुक्मिणी और मकरन्दिका वार्तालाप करते हुए रंगमंच पर दिखाई पड़ती हैं। दुःखित रुक्मिणी चित्र को उत्कण्ठापूर्वक देख रही है। वह अपने भाग्य को गोपियों जैसा भी नहीं समझती है। चित्र देखने में निमग्न वह सुवत्सला एवं सुबुद्धि को भी नहीं जान पाती और गदगद कण्ठ से रो पड़ती है। सुबुद्धि उसे ढाँढस बँधाती है। सुवत्सला उससे कहती है चित्रगत तुम्हें कृष्ण ने ग्रहण कर लिया और कृष्ण का चित्र उसके पाणि में ग्रहण करा देती है।

नेपथ्य से मंगलोत्सव के लिए नगर निवासियों एवं पुर कन्याओं के लिए महाराज की आज्ञा सुनाई जा रही है। कृष्ण के चित्रपट में रुक्मिणी का चित्र



बनाने की इच्छावाली मकरन्दिका चित्र को हाथ में ले लती है। इसी समय नगर में प्रवेश करनेवाले राजाओं के समीप आ जाने पर सुभुद्रि सुवत्सला मकरन्दिका और रुक्मिणी ने राजमहल के ऊपरी शिखर के झरोखे से देखने के लिए निश्चय किया। सुवत्सला चौड़े झरोखे से मकरन्दिका को हटाकर रुक्मिणी को कृष्ण को दिखाती है। इसी समय मकरन्दिका के हाथ से चित्रपट छूटकर कृष्ण के रथ पर गिर पड़ता है। प्रियम्बद चित्र गिरनेवाले स्थल को रुक्मिणी का भवन बताता है। कृष्ण रुक्मिणी को ओर देखते हैं रुक्मिणी लज्जापूर्वक अपना मुख हटा लेती है।

रंगमंच पर रथारूढ़ भीष्मक कृष्ण के वयशील और शौर्य को देख रहे हैं। नेपथ्य से मुकुन्द के उत्कर्षपरक गीत को सुनकर राजाओं को कुछ-कुछ क्रोध हो आया। कृष्ण का रथ आगे बढ़ जाता है।

धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए शिशुपाल के रथानुगामी रुक्मी को देखकर भीष्मक कृष्ण के पीछे चले जाते हैं। रुक्मी बन्दी से शिशुपाल के सम्बन्ध में गीत गाने का निदेश देता है। सभी शिशुपाल को देखते हैं सुवत्सला के पूछने पर सुभुद्रि इसे कृष्ण के द्वारा मारा जायेगा-ज्योतिषियों के द्वारा कही गयी भविष्यवाणी बताती है। रुक्मिणी उसे देखकर भयभीत हो जाती है। सुभुद्रि उसे ढाँढस देती है तथा शीघ्र मन्त्रसिद्धि की बात कहती है। इसी समय विवाह के पूर्व किये जानेवाले इन्द्राणी पूजन का आदेश महादेवी देती हैं। सुभुद्रि ऐसा करने के लिए उससे कहती है जिसे सुन रुक्मिणी बहुत व्यग्र हो जाती है। रुक्मी माँ द्वारा प्रेषित कंगुकी को देख शिशुपाल से विवाहार्थ तैयार होने के लिए कहता है इसी समय अपशकुन सूचक उसकी चोई आँख फड़कने लगती है। रुक्मी सारथि के साथ शीघ्रता पूर्वक चला जाता है।

चतुर्थ अंक में सात्यकि इन्द्राणीपूजन के अवसर पर गर्वोक्तियों द्वारा रक्षकों को भगाने तथा रुक्मिणी को भयभीत अवस्था का वर्णन करता है वह बलराम के पास पहुँचना चाहता है किन्तु सेना सहित बलराम को आता हुआ देखकर शिशुपाल के कथोपरान्त नगर जलाने की आशंका व्यक्त कर रहा है। बलराम

सात्यकि से पूछते हैं कि उसे कितने मारा ? वह समझ जाता है कि रुक्मो और शिशुपाल कृष्ण के पीछे गये होंगे किन्तु अपने निकट राड़-मुख रुक्मो को वह तथा बलभद्र को शिशुपाल ललकारते हैं। रुक्मो और शिशुपाल लौटकर अनेक अपमानजनक एवं व्यंग्यपूर्ण वचनों से बलराम को क्रुद्ध कर देते हैं। शिशुपाल कहता है, 'हल को खींचनेवाले आप बैल हैं। आपको मारने से हमें क्या मिलेगा' ?

युद्ध के नगाड़े को सुनकर कृष्ण लौट आते हैं सुबुद्धि तथा कृष्ण रुक्मिणी को धैर्य धारण कराते हैं। क्रुद्ध बलराम को सात्यकि लौटने का औचित्य समझाता है वलदेव रथ के पीछे दौड़ते हुए शिशुपाल को ललकार कर प्रहार करना चाहते हैं। शिशुपाल कृष्ण को आगे से हटने के लिए अनेक अपमानपूर्ण वचनों का प्रयोग करता है। सात्यकि सौ पापों के सहन का स्मरण कराता है। रुक्मो और शिशुपाल प्रकट युद्ध की अपेक्षा माया युद्ध का सहारा लेते हैं। कृष्ण इस समय गरुड़ का स्मरणकरते हैं उसके आने पर पीठ पर सवार हो आकाश की ओर उड़ते हैं। रुक्मिणी को देख भाल सुवत्सला और सुबुद्धि करती हैं।

नेपथ्य से गरुड़ को इनके वर्ग के योद्धाओं में इन्हें छोड़ आने का आदेश दिया जा रहा है सुबुद्धि रुक्मिणी को भाई बचाने तथा कृष्ण के प्राप्त करने की-दुहरी प्यास दे रही है। कृष्ण बलराम के पास आकर सूचना देते हैं सन्धि करके मैंने उन दोनों को छोड़ दिया। बलराम श्री कृष्ण को दारिका जाने के लिए कहते हैं। श्री कृष्ण सुबुद्धि एवं सुवत्सला से विदा होने की अनुमति माँगते हैं। उसी समय ज्योति के रूप में प्रकट हो देवी भगवतो सुबुद्धि से कहती हैं कि तुम्हारे शिष्या की आराधना सफल होगी और कृष्ण तुम भी रुक्मिणी के प्रेम के पात्र बनो। सभी नेपथ्य से सुनाई पड़नेवाली वदघोषिका देवी को प्रणाम करते हैं। भरतवाक्य के साथ ईहामुग समाप्त हो जाता है।

वत्सराज के इस ईहामुग की कथावस्तु उसके प्रतिभाजन्य कल्पना के कारण बहुत परि वर्तित रूप में है परन्तु कथावस्तु का अधिकांश भाग महाभारत,

हरिवंश पुराण, भागवत एवं विष्णु पुराणादि से ग्रहीत है। इस ईहामृग के कथानक का ताना-बाना महाभारत एवं श्रीमद्भागवत के आधार पर निर्मित है। महाभारत एवं श्रीमद्भागवत में कथा इस प्रकार है। विदर्भ देश में भीष्मक नामक राजा था। उसके चार पुत्र रुक्मो, रुक्मरथ, रुक्म बाहु और रुक्मकेश नामक पुत्र थे। रुक्मिणी नामक एक कन्या थी। नारद से कृष्ण के रूप वय आदि गुणों को सुन रुक्मिणी ने कृष्ण को वर के रूप में चुनने का निश्चय किया। श्रीकृष्ण भी उससे विवाह करना चाहते थे। रुक्मो को छोड़ शेष सभी कृष्ण से रुक्मिणी का विवाह करना चाहते थे किन्तु रुक्मो के आगे उनको न चलो। अतः रुक्मो ने चन्देरो के राजा शिशुपाल से उस रुक्मिणी के विवाह का निश्चय किया। इस जानकारी के प्राप्त होने पर रुक्मिणी ने सुशील नामक ब्राह्मण को दारिका भेजा तथा विवाह के पूर्व अम्बिका के मन्दिर में मिलने के लिए कहा। अतः श्रीकृष्ण उस ब्राह्मण के साथ कुण्डिनपुर आ गये।

रुक्मिणी के निमित्त गये हुए श्रीकृष्ण को जान बलराम बड़ी सेना लेकर कुण्डिनपुर पहुँचे। श्रीमद्भागवतानुसार¹ विदर्भराज ने समझा कि श्रीकृष्ण विवाह देखने आये हैं अतः उनका स्वागत सत्कार भीष्मक ने किया। ऐसा ही विष्णुपुराण² में भी है।

विवाह के पूर्व कुलाचार के लिए गौरी पूजन के लिए गयी। हरिवंश पुराण³ के अनुसार इन्द्र-इन्द्राणी दर्शन हेतु गयीं। जब वह दर्शनपूजन कर बाहर आयों तो शत्रुओं के मध्य श्रीकृष्ण ने रथ पर बैठा लिया और दारिका को ओर चल दिया।

सभी आमत राजा सेनाएँ लेकर दौड़ पड़े। बलराम भी वहाँ उपस्थित थे अतः भयंकर युद्ध हुआ। बलराम के नेतृत्व में सेना का नाश देख सभी राजा लौट पड़े।

1. भागवत ३. 10. 53

2. विष्णुपुराण : 5. 26

3. हरिवंशपुराण : 25. 9

रुक्मिणीहरण ईहामुग का मूल स्रोत महाभारत अथवा श्रीमद्भागवत है, बहना कठिन है किन्तु लगता है कि महाभारत ही इसका मूल स्रोत है।

समुद्रमन्थनाभिधान समवकार :

यह तीन अंकों वाला समवकार है, जो समुद्रमन्थन तथा विष्णु और लक्ष्मी के प्रेम व्यापारों पर आश्रित है। नान्दी पाठ के अन्त में सूत्रधार ब्रह्म मुहूर्त में उठकर अपने हित का चिन्तन करना चाहिए-ऐसा कहता है। इसके यह पूछने पर कि हम बारह भाई किस प्रकार एक साथ धन्य हो सकते हैं स्थापक परमर्षि अथवा समुद्र के सेवन की बात करता है। नेपथ्य में समुद्र से सारे मनोरथ पूर्ण होते हैं, इस कथन की सुन पद्मक की आवाज महचानकर सूत्रधार और स्थापक रंगमंच से चले जाते हैं।

प्रकट हुआ पद्मक यह बताता है कि मनोरथपूर्ति का साधन समझकर देवता और राक्षस इसके मंथन के लिये कृतनिश्चय हो गये हैं इसका कुछ फल हो या न हो किन्तु लक्ष्मी का प्रेम सफल हो जायेगा। गंगा देवी द्वारा लक्ष्मी को देने के लिये लिये हुए चित्र को लेकर वह वेलावन पर निद्रित होने का अनुभव कर रहा है। निद्रित को निन्दित समझनेवाले क्रुद्ध निष्ठुरक को देख पद्मक उनसे प्रणाम कर स्वयं को उलाहना देता है। वह उससे अपनी स्वाभिनी लक्ष्मी के लिये मन्त्र तन्त्र आदि से कमलनयन विष्णु को प्रसन्न करने के लिए कहता है किन्तु निष्ठुरक और पद्मक में विवाद हो जाता है। पद्मक के हाथ में स्थित चित्र को निष्ठुरक अपना बताता है और माँगता है। पद्मक उसे पापी कहता है जिसके कारण चित्रपट उसके हाथ से छिन्नकर समुद्र में चला गया। इसे सुनकर निष्ठुरक लुट हो जाता है। पद्मक से यह सुनकर कि लक्ष्मी यहाँ विष्णुपूजन के लिये आ रही हैं वह उस स्थल को ठहरने के लिये अनुपयुक्त मानता है। निष्ठुरक उसे झण्डे से मारने की बात करता है, तो पद्मक लुट जल जन्तु द्वारा। उसी समय धृति और लज्जा नामक सखियों के सहित हाथी पर सवार लक्ष्मी समुद्र से निकलती हैं। वे फूल चुनकर अपने द्वारा पार्वतीपूजन का संकल्प व्यक्त करती हैं। हाथी से उतरकर वे सखियाँ

आपस में हँसो मजाक करती हैं और पुष्पचयन का अभिनय करती हैं। लक्ष्मी विचकिल तथा ककैलि के फूलों को अज्ञानतावश मुक्तमाला और विह्वल समूह बताती हैं। लक्ष्मी फूलों से पार्वती का पूजन करती हैं। उसको फड़कती हुई बाँधी भुजा को धृति सौभाग्य सूचक बताती है। छिपा हुआ पद्मक प्रकट होकर लक्ष्मी को किष्णु का चित्र देता है। उसे देखकर वह स्वयं को पूर्ण दोहद वाली मानती है तथा चित्रांकित किष्णु का पूजन करती है। नेपथ्य में पेड़ों के उखड़ने और आँधी आने की सूचना दी जाती है। लक्ष्मी भयंकर वायु का उपद्रव समझती हुई हाथों पर आरुढ़ सखियों सहित समुद्र में प्रवेश कर जाती है। पद्मक भी समुद्र में चला जाता है।

तत्पश्चात् बृहस्पति इन्द्रादि देवताओं सहित वासुदेव का आगमन होता है। वे लोग वेलावन में ब्रह्मा शंकर एवं सभी असुरों और मन्दराचल को प्रतीक्षा करते हैं। बृहस्पति समुद्रमंथन को असम्भव मानते हैं किन्तु वासुदेव सबके सहयोग से इसके पूर्ण होने की बात करते हैं। इसी समय ब्रह्मा, महेश और मन्दराचल का आगमन होता है। शंकर के आदेश से शेषनाग मन्दराचल में लिपटकर नेती बन जाता है देवता और राक्षस दोनों किनारों को पकड़ लेते हैं और चलाने का उद्योग करते हैं। किष्णु भी उसे घुमाते हैं। सर्वप्रथम वेद का आगमन होता है। बलि के द्वारा वासुदेव से प्रार्थना किये जाने पर महेश दानवों को बँटवारे का इच्छुक समझते हैं। किष्णु अग्नि निश्रुति को वस्तु सुरक्षा का भार तथा महेश की आज्ञा से मथनोपरान्त बँटवारे की बात करते हैं। पुनः खूब मंथन करने पर ऐरावत् निकलता है उसे वेलावन में ठहराया जाता है। इसी प्रकार क्रमशः उच्चेन्नवा, चन्द्रमा, महोषधियाँ, रत्न और लक्ष्मी निकलती हैं। महेश द्वारा आज्ञाप्त वासुदेव दुःखी लक्ष्मी का उद्धार करते हैं गंगा उसे वेलावन में पहुँचाती है। बलि वेशव और शंकर को दुर्माचलस्त समझते हैं क्योंकि वस्तुओं का बँटवारा नहीं हो रहा था पश्चात् निधियों से परिपूर्ण कुम्भों के साथ अमृत निकलता है। किष्णु अग्नि को बुलाकर उसे सुरक्षित रखने की बात कहते हैं। उसी समय बलि के द्वारा आँख मारने पर कुजम्भ अग्नि का रूप धारण कर अमृत ग्रहण कर लेता है। अन्त में क्रमशः अंकुश, दण्ड, खड्ग सहित अनेक आयुध सुरा तथा विष निकलते हैं। नेपथ्य से राक्षसों तथा देवताओं का कोलाहल सुनायी पड़ता है। महेश

कृष्ण पर वस्तुओं की रक्षा का भार डालते हैं। स्वयं अनर्थ को शान्त करने की जिम्मेदारी लेते हैं।

दूसरे अंक में स्त्रीवेष धारण किये हुए विष्णु तथा सखी का वेश धारण किये हुए वैततेय वार्तालाप में लिप्त रंगमंच पर दिखाई पड़ते हैं। वे तेवक सहित बलि को देखकर प्राकृत में वार्तालाप करने लगते हैं। बातचीत करते हुए बलि कुजम्भ से अमृत प्राप्ति को, कामिनी सँसर्ग से तुच्छ मानता है। वे दोनों जंगल से कस्तूरी की सुगन्ध सूँघकर उस सुगन्धि को ओर जाते हैं और अपूर्व रमणी को देखते हैं। वियोगजन्य चर्चा में तन्मद् निपुणिका और मोहनिका के सम्मुख कुजम्भ और बलि प्रकट होते हैं। निपुणिका मोहनिका को ओर से प्रणाम करती है। कुजम्भ हुपट्टा बिठाकर बलि को उस पर बैठाता है। निपुणिका मोहनिका को ओर से परिचय छोटी त्मुद्रपुत्री के रूप में कराती है तथा स्वप्न में उसके द्वारा किसी पुरुष को देखने की चर्चा करती है। आपके दर्शन से यह कुछ-कुछ आसक्त दिखाई पड़ रही है। मुख नोचा करके मुस्कराती मोहनिका को देखकर बलि उसकी कृपा से अपने आपको समादृत समझता है। इसी समय सन्धानक सहित गुरुआचार्य का आगमन होता है उस अपूर्व सुन्दरी का परिचय बलि त्मुद्र की द्वितीय पुत्री के रूप में राते हैं। नेपथ्य से राक्षसों के मरने की सूचना मिलती है। उसी समय आचार्य गुरु को बाँयी आँख फड़कती है जिसे वे अपशकुन मानते हैं और बलि को युद्ध से विरत रहने की सलाह देते हैं। उसके न मानने पर अमृत चखकर ही युद्ध करने की सलाह देते हैं लेकिन वह अपने भुजबल की चर्चा करता है। गुरु उसे घमण्ड न करने की सलाह देते हैं और कहते हैं कि क्या विष्णु महिला हो गये हैं। बलि कुजम्भ से अमृत का घड़ा लेकर मोहनिका को दे देता है। मोहनिका वेषधारी बैकुण्ठ के स्मरण मात्र से अग्नि दिशाओं को जलाने लगती है। अमृत सहित बैकुण्ठ उसमें प्रवेष्ट करना चाहते हैं अतः गुरु अग्नि स्तम्भवन करना चाहते हैं किन्तु वह व्यर्थ हो जाता है। वे ध्यान द्वारा विष्णु की उपस्थिति जान लेते हैं। गरुड एवं विष्णु महिला के स्वरूप को छोड़ देते हैं।

तृतीय अंक में अपने अँगुलियों की ओर ध्यान लगाये हुए तथा पिता के

वियोग में दुःखी लक्ष्मी तथा कृष्ण रंगमंच में प्रवेश करते हैं । वे उतते, उतके पिता का शीघ्र आगमन बता रहे हैं जिन्हें बुलाने के लिये वरुण गये हुए हैं । उनके द्वारा ही वस्तुओं का वितरण होगा और मैं सदा समुद्र में ही रहूँगा । इसी समय अपशकुन सूचक कृष्ण की बाँयो आँख फड़कती है । नेपथ्य से मन्थनजन्य पदार्थों के समुद्र में जाने की बात सूचित होती है । वे दिक्पालों से उसकी सुरक्षा के लिये कहते हैं जब तक कि गरुड़ न आ जायें । इसी समय छल से शंकर का वेष बनाये हुए विष्णु से व्याकुल शुक्राचार्य कृष्ण से अमृत माँगते हुए प्रवेश करते हैं । शंकर को देखकर सन्देहयुक्त होकर ध्यान से देखकर कृष्ण शुक्राचार्य को पहचान जाते हैं । भयभीत शुक्र अन्तर्ध्यान हो जाते हैं । अनन्तर शंकर सहित गरुड़ का आगमन होता है । उसी समय ब्रह्मा आदि देवों के साथ समुद्र भी आते हैं । महेश और कृष्ण आदर सहित उन्हें बैठाते हैं । लक्ष्मी आँसुओं सहित समुद्र के गले लग जाती है । शंकर अपराधी की तरह शिर नीचा कर लेते हैं । समुद्र उनके द्वारा किये गये अपमान को भी मान समझते हैं । वे कहते हैं कि मैं न तो नपुंसक हूँ न किसी के द्वारा परास्त हुआ हूँ, जो मुझे देखकर आप सभी दुःखी हो रहे हैं । शंकर समुद्र की प्रशंसा कर सभी वस्तुओं के वितरण के लिये अनुरोध करते हैं । वे ब्रह्मा को वेद, इन्द्र को ऐरावत तथा उच्चैःश्रवा मेरु की तथा मन्दर की महौषधियाँ, कुबेर की खजाना, वरुण की मदिरा तथा पाश, वायु की अंशु निश्रिति की कृपाण, यम की दण्ड, वासुकि आदि सर्पों की विष, कृष्ण की लक्ष्मी तथा कन्यादान की दक्षिणा के रूप में कौस्तुभ मणि प्रदान करते हैं । अन्त में समुद्र शंकर की स्तुति करते हैं । भरतवाक्य के साथ इस समवकार का अवसान हो जाता है । देवों और असुरों के संयुक्त प्रयास से समुद्र मंथन हुआ । इसका सर्वाधिक प्राचीन वर्णन हमें वाल्मीकि कृत रामायण के बालकाण्ड के 45वें सर्ग में मिलता है । आंशिक रूप से यह वर्णन महाभारत तथा कुछ रूपान्तर अधिकांश पुराणों में मिलता है । महाभारत के आदि पर्व में स्थित समुद्र मंथन की कथा ही इस समवकार का उपजोव्य है जो इस समवकार से काफी मिलती जुलती है । श्रीमद्भागवत में यह कथा इससे कुछ भिन्न है । हरिवंश

पुराण में इसका प्रतीकात्मक अर्थ लगाया गया है।

वत्सराज ने महाभारत को इस कथा को लेकर, उसमें पर्याप्त नाटकीयता का समावेश कर, उसे अभिनय योग्य बना दिया है।

त्रिपुरदाह डिम :

कवि वत्सराज द्वारा विरचित चार अंकों वाला एक उत्तम रूपक है, इसमें नान्दो पाठ के अनन्तर रंगमंच पर सूत्रधार पारिपाश्विक से परमर्षिद देव के दान एवं ग्रहण सम्बन्धी वार्तालाप करता है। नेपथ्य से कलह प्रिय नारद की आवाज आती है। भयभीत सूत्रधार रंगमंच से चला जाता है प्रस्तावना के पश्चात् नट की उक्तियों से क्रुद्ध नारद रंगमंच पर राक्षसों की निन्दा करते हैं। नेपथ्य से निरंकुश जिह्वावाले ब्राह्मण नारद की अबध्य समझ राहु द्वारा योद्धा के रूप में इन्द्र विष्णु तथा शंकर की निन्दा की जाती है। नारद भी व्यंग्य वचनों से उसे उत्तर देते हैं। राहु नारद से कहता है कि उसके मिथ्या अहंकारयुक्त वचनों से राक्षस क्रुद्ध नहीं होंगे, क्योंकि उनके क्रुद्ध हो जाने पर देवता समाप्त हो जायेंगे, तब तुम्हारी लड़ानेवाली विद्या का प्रयोग नहीं हो पायेगा। नारद उपहास में कहते हैं कि क्रुद्ध देवता राक्षसों का नाश कर देंगे, उसे सुन राहु क्रुद्ध होकर चला जाता है। वे भी शिव के पास चले जाते हैं। रंगमंच पर क्रुद्ध देवताओं द्वारा पूजा किये जाते हुए शंकर बृहस्पति से इस क्रोध का कारण पूछते हैं। नारद कहते हैं कि आप गज चर्म त्यागकर मुनि वृत्ति धारण कर लीजिये, क्योंकि वे राक्षस युद्ध में बड़े भयानक हैं। इन्द्र नारद को शाबासी देते हैं। दुःखी इन्द्र को महेश सहायता का वचन देते हैं। यम उनसे कहते हैं कि उनके वर प्रदान पर सन्देह के कारण देवता दुर्बल हैं। क्रमशः अग्नि वायु, वरुण, कुबेर, निर्ऋति तथा नन्दो युद्ध के प्रति उत्साहयुक्त हो, स्वसामर्थ्य का वर्णन करते हैं बृहस्पतित्रिपुरासर के अत्याचारों से पीड़ित पृथिवी तथा शेष नाग की दशा का वर्णन करते हैं।

अनन्तर प्रवेश करती हुई पृथिवी विष्णु की उलाहना न देने का कथन करती हुई चन्द्रशेखर से स्वदुःखवर्णन का संकल्प करती है। वह शेष के दुःखों का भी वर्णन

वर्णन करती है। वे दोनों समीप में स्थित देव परिषद में विराजमान शिव के पास जाकर कृष्णध्वज को नमस्कार करते हैं। वे शिवहव्य-कव्य प्रदात्री पृथिवी को कष्टपूर्ण स्थिति के बारे में पूछते हैं पृथिवी शेष के भी दुःखों का वर्णन करती है। उपस्थित शिव के ससुर हिमालय पंख न होने पर भी इच्छानुकूल रूप धारणकर मदद का आश्वासन देते हैं। इसी समय नारद सूर्य और चन्द्र की अनुपस्थिति का कारण त्रिपुर द्वारा देवमार्ग का अवरोध बताते हैं।

नेपथ्य में अत्यन्त क्रुद्ध राहु द्वारा सूर्य के विनाश की सूचना दी जाती है। रक्षार्थ आह्वान करने पर शिव नन्दो के धनुष मारते हैं देवयान तथा पितृयान के मार्गावरोध को दूर करने के लिए वह शिव से त्रिपुरदाह का आग्रह करता है अनन्तर धर्म प्रवेष कर शिव को प्रणाम करता है। नारद भी अपने बड़े भाई धर्म को प्रणाम करते हैं वह धर्म रक्षा कार्य में विष्णु के सेनापति बनाने का आग्रह करता है, जिसे सुन कार्तिकेय क्रुद्ध हो जाते हैं इसे देख नारद प्रसन्न हो जाते हैं। महेश विष्णु को पिता तुल्य बताते हैं और बक बक बन्द करने के लिए कहते हैं वे नारद को ब्रह्मा तथा विष्णु को बुलाने के लिए भेजते हैं तथा दैत्यों के माया प्रपंच से बचने की सलाह के साथ-साथ अपने-अपने दिशाओं में तैयार रहने के लिए कहते हैं।

द्वितीय अंक में राज्य कार्य के निमित्त जाते हुए विपरीत अलोक द्वारा पुकारा जाने पर वह उसे न देखने का कारण बताता है कि गुप्तचरों ने सूचना दी है कि देवों ने मन्त्रणा करके नारद को विष्णु एवं ब्रह्मा को बुलाने के लिए भेजा है। अलोक उसे दिक्गजों की पराजित करने के लिए खरगोशों का मेला कहता है। क्रुद्ध विपरीत शत्रु को छोटा न समझकर सावधान रहने की सलाह देता है त्रिपुरनाथ के सन्देशानुसार वे दोनों ब्रह्मा शंकर इन्द्रादि देवों को ठगने के लिए चले जाते हैं इसके बाद रंगमंच पर नारायण और नारद दिखाई पड़ते हैं।

नारद को देख घबड़ाहट सहित नारायण प्रतिज्ञाबद्ध हो दानवों के विनाश का संकल्प लेते हैं। नारद त्रिपुरा सुर के भय से देवताओं की दुरवस्था

का कर्म करता है। नारायण इसका कारण शिव आशीर्वाद बताते हैं। नारद किष्कु से कहते हैं कि आपके वर प्रदान की आज्ञा से शिव ने पता लगाने के लिए मुझे भेजा है। इसी समय नन्दो दिखाई पड़ता है वह देवताओं के परस्पर झगड़ से विन्तित है वह किष्कु लोक में पहुँचकर नारद के साथ मन्त्रणा करनेवाले तथा शिव की अस्मानिता करनेवाले किष्कु को उलाहना देता है उसकी इस बात से क्रुद्ध नारद अतृप्त हो जाते हैं। किष्कु एवं शंकर में कलह खाने के कारण न नन्दो उनको भिन्दा करता है किष्कु ध्यान द्वारा मायाजन्य सारी परिस्थितियों को जान लेते हैं और ब्रह्मा के पास जाने का किष्कु संकल्प अभिव्यक्त कर नन्दो को शिव के पास समझाने के लिए भेजते हैं। वे ब्रह्मा के पास नारद को भेजते हैं। उसी समय कपटो नारद के साथ रंगमञ्च पर ब्रह्मा दिखाई पड़ते हैं। वे शाय के जल से किष्कुको शान्त करना चाहते हैं। उसी समय वास्तविक नारद वेग से पहुँचकर वह किष्कु आपका स्वागत कर रहे हैं—कैसा कहते हैं। कपटो नारद तुरन्त गायब हो जाता है पीछे दुर्लभता करने पर वह नहीं दिखाई पड़ता। ब्रह्मा लज्जित हो अधोमुख हो जाते हैं।

नन्दो के द्वारा अनुसरण किये जाते हुए महेश रंगमञ्च पर प्रवेश कर बिना लियारे कार्य करने के कारण दुःखी हो रहे हैं वे किष्कु लोक पहुँचकर किष्कु को प्रणाम करते हैं। वे ब्रह्मा को देखकर उन्हें भी प्रणाम करते हैं। वे सभी यथास्थान बैठ जाते हैं। महेश और ब्रह्मा कपटो नारद द्वारा परस्पर उगे जाने का कर्म करते हैं। ब्रह्मा बताते हैं कि मैंने उन्हें त्वां वरदान दिया है। वे तीनों एक क्षण से विट होने पर हो मारे जा सकते हैं। इसी लिए वे तीनों योजन के अन्तर से छुपते हैं। उसी समय भयंकर शिरवाला नगर ल्पे वर्तन के फूटने से विनाश विनगरियों वाला उल्का ल्पी दानव विनाश हुएक महान् अपशकुन नन्दो को दिखाई पड़ता है।

नेपथ्य से भागते हुए दानवों को रोका जा रहा है। कपट ल्प धारण करनेवाले राक्षस द्वारा त्रिपुरासुर को तृपित किया जा रहा है कि ब्रह्मा महेश और केशव को मेरे द्वारा ठग लिया गया तथा वे इन्द्रादि भी शोभ नहीं हैं

भाग जायेंगे तो आप इन्द्र को राजधानी में प्रवेश करें। विपरीत को इस सफलता के लिए बधाई दी जाती है। स्वर्ग के लिए दानवों के प्रस्थान की सूचना नारद द्वारा देने पर विष्णु इन्द्रजाल द्वारा अन्धकार फैला देते हैं जिससे राक्षस व्याकुल हो जाते हैं। नेपथ्य से देवकृत माया समझकर उन्हें मार डालने का आदेश दानवों को दिया जाता है। देवताओं को उस माया प्रपंच से सावधान करने के लिए नारद चले जाते हैं।

तीसरे अंक में रंगमंच पर तेज कदमों से जाते हुए स्फुटाक्षर द्वारा शुक्राचार्य शिष्य विशादाशय को ब्राह्मण होने से प्रणाम कर अपने राजा सर्वताप द्वारा यथार्थ सूचना देने के कारण अपमानित होने की बात बता रहा है। विशादाशय भी कहता है— सर्वताप ने मुझे दानवों के लिए माया का इन्द्रजाल करने के लिए कहा है जिससे देवता समूल विनाश की आशंका से इन्द्र नगरी को छोड़ दें, किन्तु मैं ऐसा मायामय अपुण्यकर्म नहीं करूँगा। दूसरे उनके प्रति इन्द्रजालादि का विपरीत फल होगा। यह शान्तिदायक कर्म करने पर भी तदनुकूल आचरण वाला नहीं है। दोनों अपने कार्य का निर्वह करने के लिए वापस लौट आते हैं। अनन्तर सेना सहित रंगमंच पर सर्वताप का प्रवेश होता है। सर्वताप के पूछने पर विशादाशय कहता है कि मैंने अनेक नेत्रवाले इन्द्र के त्वचा का पताका बनाया जिसे यमराज के दण्ड के आगे वरुण के पाश से बाँधा। सागर में मायाजन्य कोलाहल उत्पन्न किया। सर्वताप उससे यह बताता है कि यह हमारा कुलाचार है। विशादाशय उससे माया की असफलता एवं कार्तिकेय के नेतृत्व में दैत्यों के नाश की सूचना देता है।

नेपथ्य से उच्चस्वर में सूर्य द्वारा अग्नि की सहायता लेकर माण के सदृश लौहनगर के जलाने की सूचना दी जाती है जिसे सुनकर सहायता के लिए जाने वाले सर्वताप को विशादाशय के द्वारा मृत्यु की आशंका से रोका जा रहा है। थोड़ी देर में अग्नि के शान्त हो जाने पर सर्वताप प्रसन्न हो जाता है। उसी समय स्फुटाक्षर आकर हिमालय एवं चन्द्रमा द्वारा चन्द्रताप पर किये गये आक्रमण की सूचना देता है। सर्वताप अपनी नगरी से दहनास्त्र फेंकता है जो निष्फल

हो जाता है इसी समय अपशकुन सूचक विषादाशय को बाँईं आँख फड़कने लगती है अनन्तर देव सेना सहित कार्तिकेय युद्ध के लिए ललकारते हैं। घोररोधित वाद-विवाद के पश्चात् कुमार अपने बाण से उसकी सेना को नष्ट करने लगते हैं। नन्दो को सलाह पर कुमार स्वर्ण के परकोटों से उस अमृत कुण्ड को भर देते हैं जिससे राक्षस जीवन धारणकर पुनः युद्ध के लिए जाते थे। उसी समय सर्वताप एवं विषादाशय के ध्यान करने पर शुक्राचार्य प्रकट होते हैं इसी नारद युद्ध से विरत करनेवाला शंकर का आदेश कार्तिकेय के निमित्त सुनाते हैं उस आज्ञा को शिरोधार्य कर कार्तिकेय तपरिवार वहाँ से चले जाते हैं।

चतुर्थ अंक में प्रातःकाल दुःस्वप्न से उद्दिग्ध शुक्राचार्य एवं बुरी खबर सुने हुए विषादाशय रंगमंच पर शान्तिदायक कर्म के विन्निचय के साथ दिखाई पड़ते हैं। उसी समय नेपथ्य से एक पहिली सुनाई पड़ती है जिसका अर्थ शुक्राचार्य मोक्ष देवताओं द्वारा मिलकर त्रिपुरासुर का वध समझते हैं उसी समय वह शिष्य विषादाशय से दुःस्वप्न कहता है कि, 'आज मैंने सभी अंगों पर दूसरे अंगों को धारण करनेवाला तिर पर बन्धूक की माला धारण किये हुए उँट पर पिलखुन के कोमल पत्तों का अनुकरण करनेवाले वस्त्र धारण किये हुए मांगलिक तूर्यवादन के साथ सम्पूर्ण विवाह की वाम्बूषा धारण किये हुए प्रातःकाल दक्षिण दिशा की ओर जाते हुए सर्वताप को देखा।' दोनों सब कुछ भाग्य पर छोड़कर कर्म करने में विश्वास के साथ रंगमंच से चले जाते हैं। इसी समय चिन्तित नारद एवं ब्रह्मा दिखाई पड़ते हैं।

नेपथ्य से पृथिवी रूपी रथ पर आरूढ़ शंकर के सारथि कर्म के लिए ब्रह्मा को पुकारा जा रहा है ब्रह्मा महेश को एवं बाण बने हुए विष्णु को प्रणाम करते हैं। महेश सुवर्णपुर के पीछे राजतपुर अनन्तर लौहपुर को आश्चर्य सहित एक ही बाण का लक्ष्य बना देखते हैं। उसी समय सुवर्णपुर से विहार करता हुआ सर्वताप उसे देव निर्मित त्रिपुरी समक्ष सूर्यताप एवं चन्द्रताप को जलाने का आदेश देता है। विषादाशय कान में उस त्रिपुरी की शुक्र निर्मित बताता है, किन्तु वह उस पर विश्वास नहीं करता तथा उस कृत्रिम त्रिपुरी को भी निन्दा का हेतु समझता है।

ब्रह्म विदाशय गुरु के समीप चला जाता है। सर्वताप उस त्रिपुरो के नष्ट हो जाने पर देवताओं को ललकारता है। एक जगह सन्निहित उन त्रिपुरियों को नष्ट करने की नारद सलाह देते हैं। अनन्तर ब्रह्मा वेग से रथ चलाते हैं शंकर के वाणाग्नि से त्रिपुरो जलने लगती है उसी समय नेत्र बाधा से व्याकुल नारद देवताओं को न देखने का अभिनय करते हैं। मुनि लोग सपरिवार सम्पूर्ण देवताओं को त्रिपुर के सम्मुख स्थित बताते हैं। महेश रथ रुकवाकर मुनि नारद सहित कैलाश के एक भाग पर उतरते हैं। सभी देवता यथास्थान बैठ जाते हैं नारद एवं इन्द्रादि देव उनको स्तुति करते। भरतवाक्य के साथ छिन्न समाप्त हो जाता है।

त्रिपुरदाह की कथा ¹ तीन धातुओं से बने तीन नगरों की कहानी हमारे प्राचीन साहित्य- वेद पुराण आदि से लेकर अद्यावधि मानव मन को प्रसिद्ध कथा के रूप में प्रभावित किये हुए है। यह संस्कृत साहित्य में समय-समय पर या तो कथा के रूप अनुत्पूत है अथवा मनोहारिणी कविता के रूप में चित्रित होती रहती है। ² इसके अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में त्रिपुरगाथा के अनेक उदाहरण भी विद्यमान है। ³

1. अ॥ त्रिपुरदाह छिन्न : भारत नाट्यशास्त्र

आ॥ त्रिपुर विजय चम्पू : अतिरात्रयज्वन् : तंजोर भाग 8 पृ० 3378

इ॥ त्रिपुर विजय : भोगानाथ कृतः आर्द्ध०२० भाग 14: पृ० 24

ई॥ त्रिपुर विजयम् : गंगनाथ झा : रि, इ, इलाहाबाद जर्नल वर्क 8भाग 4

उ॥ त्रिपुर विजय चम्पू : तंजोर भाग 8 : पृ० 3044 आर०आर०भाग 3: पृ० 1605

उ॥ त्रिपुर दहन : टी०सी० दो; पृ० 2589

2. क॥ त्रिपुर विजय व्यायोग : पद्मनाभ : टी०सी० 3 : पृ० 3370

उ॥ त्रिपुर दहन : वासुदेव : गंगनाथ झा रितर्क ३० ज० वर्क 8:भाग 4

ग॥ त्रिपुर विजय चम्पू : नृसिंह : तन्जोर : भाग 7 : पृ० 3044

3. शिव महिम्न स्तोत्रम् : पुष्पदत्त : 182 श्लोक

त्रिपुरदाह की कथा महाभारत¹ में दो बार स्कन्दपुराण² में दो बार मत्स्य पुराण³ एवं शिवपुराण⁴ में अनेक बार हरिवंश⁵ पद्म⁶ और⁷ ब्रह्म वैवर्त⁸ भागवत्⁹ और लिंगपुराण¹⁰ में एक-एक बार उपलब्ध होती है। महाभारत के कर्ण पर्व में यह घटना बड़े स्पष्ट एवं सरल रूप में वर्णित है जिसका मूल स्रोत वैदिक संहिताओं¹¹ एवं ब्राह्मण ग्रन्थों¹² में उपलब्ध होता है। इससे यह ज्ञात होता है कि त्रिपुरगाथा एवं इसी प्रकार के अन्य गाथाएँ अविच्छिन्न मूल स्रोत से बिना किसी विशेष उद्देश्य के लिखी गई है।

रूपकार वत्सराज के त्रिपुरदाह का आधार मुख्यतः महाभारत¹³ है, किन्तु अपनी कल्पना से पर्याप्त परिवर्तन करके त्रिपुरदाह छि में कथावस्तु वत्सराज ने प्रयुक्त किया है। महाभारत के कर्णपर्व की कथा जो इसका उपजीव्य है संक्षेप में इस प्रकार है। - तारकामय नामक युद्ध में देवों ने दैत्यों को परास्त कर दिया। तारक दैत्य के तीनों पुत्र ताराक्ष, कमलाक्ष और

1. महाभारत : कर्ण पर्व : अध्याय 33-34:द्रोणपर्व अ० 202
2. स्कन्द पुराण : अवन्ती खण्ड {रेवाखण्ड} अध्याय 27-28
3. मत्स्य पुराण अ० 129, 135, 139
4. शिवपुराण : ज्ञान संहिता: अध्याय 19 रुद्र संहिता युद्ध खण्ड अ० 4-12
5. हरिवंश पुराण : भक्तिपर्व : अध्याय 133
6. पद्म पुराण : स्वर्ग खण्ड : अध्याय 7
7. सौर पुराण : अध्याय 34
8. श्रीमद् भागवत् : स्कन्ध 7 अध्याय 10
9. लिंग पुराण : अध्याय 71
10. काष्क संहिता 24/10
11. {अ} ऐतरेय 3/3/13 {ब} तैत्तिरीय 6/3/21 {स} शतपथ 6/3/3/25
12. पौ० एल० वैद्य सम्पादित तथा भा० ओ० रि० पूना से प्रकाशित
13. महाभारत : कर्ण पर्व

विष्णुन्माली ने कठोर तपस्या कर ब्रह्मा को प्रसन्न कर तीन नगरों में बैठकर तारो पृथिवी पर आकाश मार्ग से विघरण करने और 1000 वर्ष एक जगह मिलने पर तथा तीनों पुरों के सञ्च होने पर किसी देव द्वारा एक ही बाण से नष्ट होने पर मृत्यु का परदान प्राप्त किया। प्रसन्न होकर इन दैत्यों ने तलाहकर सुवर्ण का, रजत का और लोहे का पुर निर्माण किया। सुवर्ण पुर स्वर्ग में, रजतपुर अन्तरिक्ष और लौहपुर पृथिवी पर रहा। तारकाक्ष सुवर्णपुर का रजतपुर का कमलाक्ष एवं लौहपुर का विष्णुन्माली अधिपति बना। इन तीनों ने त्रिलोक को अधिकार में कर लिया। मयदानव की माया से इनको इच्छाएँ पूर्ण हो जाती थीं।¹

तारकाक्ष के पुत्र ने तपस्या करके ब्रह्मा से रेता कुण्ड प्राप्त कर लिया जो मरे लोगों को जिला देता था और घायलादि अधिक बल से युक्त होकर उसमें से निकलते थे। बावड़ी को प्राप्त कर वे देवताओं को और अधिक कष्ट देने लगे। उन्होंने मद में चूर होकर देवों के उद्यान तथा श्रद्धि आश्रमों को नष्ट कर डाला।

वज्र के प्रहार से असफल देवताओं ने ब्रह्मा को अपनी कहानी सुनाई। अपनी असमर्थता व्यक्त कर शिव के पास लोगों को जाने के लिए कहा जो एक बाण से तीनों नगरों को नष्ट कर सकते हैं। अनन्तर ब्रह्मा के नेतृत्व में वे शिव के पास गये और उनकी स्तुति की। ब्रह्मा ने कहा कि मैंने दानवों को एक वर दे दिया है जिसके कारण उन्होंने मर्यादा तोड़ दी है। आपके अतिरिक्त अन्य कोई उनका संहार नहीं कर सकता तब महादेव ने कहा कि मैं धनुष बाण लेकर रथ में सवार होकर तुम्हारे शत्रु का संहार करूँगा। तुम रेता रथ और धनुष-बाण लाओ जिससे नगरों को नष्ट कर सकूँ। तीनों लोकों के तलों से विश्वकर्मा ने रथ बनाया। देवों ने विष्णु चन्द्र और अग्नि को बाण बनाया। पृथिवी रथ इन्द्र वरुण यम और कुबेर आदि लोकपालों को घोड़े एवं मन को आधारभूमि बनाया। इस प्रकार श्रेष्ठ रथ के तैयार होने पर महादेव जो ने उसमें अपने आयुध रखे। ब्रह्मदण्ड कालदण्ड एवं दण्ड और ज्वर - ये रथ के रक्षक, अथर्व

यज्ञरक्षक अग्नेय तामयेय तमस्त पुराण रथ के अग्रयोद्धा बने। इतिहास यजुर्वेद पृष्ठ रक्षक दिव्यवाणी एवं विपार्य पार्वरक्षक स्तोत कष्टकार ओंकार रथ के अग्रभाग बने उहाँ ऋतुओं ने संवत्सर को धनुष तथा अपनी छाया को अकण्ड प्रत्यंघा बनाया।

दिव्य वाण से महादेव रथ में बैठे और पूछा मेरा तारथि कौन बनेगा। देवों ने पितामह को तारथि कर्क के लिए तैयार किया और रथ पर सवार हुए महादेव ने प्रजापति से दैत्य गण को ओर रथ ले जाने के लिए कहा।

नन्दी के भारी गर्जना करने पर अनेक दैत्य नष्ट हो गये शेष युद्धार्थ बाहर निकले हुए हो शिव ने पाशुपातास्त्र से बाण चढ़ाकर तीनों पुरों के रख होने का चिन्तन करने लगे। देवों और ऋषियों ने जय-जयकार किया। जिस समय शिव संहार को चिन्ता में थे उसी समय तीनों पुर रख हुए। उन्होंने दिव्य धनुष खींचकर दिव्य वाण छोड़ा जिससे तीनों पुर नष्ट हो गये। महादेव ने असुरों को भस्म कर पश्चिम समुद्र में डाल दिया। शंकर को आज्ञा से तदनन्तर सभी अपने स्थान को चले गये।

त्रिपुर दाह की इस घटना का अर्थ हरिवंश पुराणके टीकाकारों ने आध्यात्मिक अर्थ लगाया है।

कर्पूरचरित :

इस भाण में परम्परागत भाणों के समान ही धूर्तचरित का वर्णन है। नान्दोपाठ में विषयानुसूय शिव एवं पार्वती से सम्बद्ध स्तुति है। प्रस्तावना में सूत्रधार अभिनेय रूपक का नाम और कवि परिचय देते हुए वस्तु स्थापना करता है। वह धूर्तों से सावधान करता है। नेपथ्य से इसी बात को पुष्टि की जाती है जिसे सुनकर नायक कर्पूरक उसे फटकारता है। वह माया विद्या को कार्य सिद्धि का हेतु बताता है। क्लिप्तवती केया का प्रणयो एवं कुटिल झूतकर है। जो कई दिनों से धनाभाव के कारण धूतघर में न जा सका है। एक दिन जुआहार में पहुँचकर अपने कल्पित मित्र चन्दनक से आकाशमणित करते हुए क्लिप्तवती की प्रणयझोड़ाओं का स्मरण कर चिन्तित हो उठता है। वह उसके द्वारा प्रदत्त

वीणा को गोद में लेकर बजाता है। छातो पीट-पीटकर हाथ हिलाकर अश्रुमोचन करते हुए रेता कहता है, 'मृत्यु हो उसकी सच्ची याद है।' पुनः आकाश को ओर सामने अटारी देख अपने अनुभूत प्रेम एवं उसके अंग प्रत्यंगों तथा प्रेमचेष्टाओं का स्मरण कर गाढ़ आसक्ति अनुभव करता है।

हँसो से लोटपोट कर्पूरक से चन्दनक पूछता है कि तुम विलासवती का दूत बनकर मंजोरक के पास क्यों गये तो कर्पूरक उसकी विचित्र वेशभूषा और आचरणा का स्मरण कर, उसका कारण बताता है तथा अपने और मंजोरक के मध्य हुए वार्तालाप को सुनाते हुए विलासवती की माँ के द्वारा कहे गये संदेश को भी सुनाया है। वह कहता है कि मंजोरक ने उसे निपुणक समझकर कर्पूरक के प्रति विलासवती की आसक्ति बताया। मैं मेरे झूठमूठ में कहने पर कि वह तो आप पर आसक्ति होकर संयोग के लिये व्याकुल है, उसने ताम्बूल, चंदन आदि स्वीकार कर लिया। कर्पूरक से चन्दनक ने पूछा कि चन्द्रसेना के घुराये गये रेशमी वस्त्रों से सज्ज कर मंजोरक क्यों भ्रमण कर रहा है तो उसने कहा इसे राजकाररगार में बन्द होने से कौन बचा सकता है। कितो ने छलपूर्वक इसे अँगूठी दिखाकर इसकी सारी जमापूँजी ही उछा दो। चन्दनक ने चन्द्रसेना के सर्वस्वहरणा रूपी घोर्यकर्म को मित्रता का आधाफल समझा। कर्पूरक कहता है कि मैंने उसे हारदत्त का हार देकर कहा, 'स्वामिनि, घृतकर्म में सभी जुआड़ियों को जोतनेवाले हारदत्त ने मुझे आपको बधायी देने हेतु भेजा है। इस अवसर पर सभी ने खूब खुशी बनायी। सेवकों के मघपानोपरान्त नशे में धुत्त होने पर अम्बा मायावती ने मुझे सावधान रहने के लिये कहा। सभी सेवकों के तो जाने पर मैं तारा धन लूटकर भाग आया।

आकाश को ओर वह मित्र चंदनक से हारदत्त के दौत्य कर्म का कारण बताता है। मैं जब दुर्गति से खूब पीड़ित शंकर के अपररूप हितकारी लोक देवता माणिभद्र को मैं खूब खरी खोटी सुना रहा था उसी समय जुये में विजयो हारदत्त का सेवक पूजोपहारों सहित वहाँ आया और परदेश गये हुए अपने भाई निपुणक के लिये प्रार्थना करने लगा। उसी समय मैं उसका नकली

भाई निपुणक बन उसके पीछे घल मदिरालय पहुँच गया। और चतुरक के वियोग में कर्ण विलाप करने लगा। उसने मुझे अपना वियुक्त भाई प्राप्त समझकर खूब मधुत्सव मनाया। अनन्तर उसने मदिरा के भुगतानार्थ पारितोषिक के प्राप्त होने की बात की तब मैं नकली सोने से भुगतान कर उसके गोद से हार छीनकर भाग निकला।

इसी समय नगर में कोलाहल के मध्य उद्भ्रान्त विरोधक को देख उसके इस प्रकार दौड़ने का कारण पूछता है। विरोधक कहता है मैं राजपुरुषों द्वारा हारदत्त को पकड़ लेने, इसके सेवक चतुरक द्वारा मद्यविक्रेता को कृत्रिम सोने द्वारा ठगने, दूसरे सेवक निपुणक द्वारा हार देकर चन्द्रसेना के ठगे जाने विलासवती के द्वारा क्लेशों के सम्मुख सह शपथ विरोधियों कुदृष्टियों को जीवन भर के लिये छोड़ दिये जाने के कारण मैं चन्दनक को बधाई देने जा रहा हूँ।

कर्पूरक इसे मणिन्द्र को कृपा समझता है। उसी समय आकाशवाणी के द्वारा - 'हे वत्स, मैं तुम्हारी भक्ति की अपेक्षा उलाहनों से अधिक प्रसन्न हूँ, ऐसा सुनायी पड़ता है। तथा कर्पूरक के भरतवाक्य के साथ ही कथानक समाप्त हो जाता है।

वत्सराज का यह भाग शास्त्रीय भाग है। सम्भव है कि इसकी कथा वस्तु किसी लोक प्रचलित परम्परा से ग्रहीत है। समग्र दृष्टि से विचार करने पर प्रतीत होता है कि यह कवि को निजी कल्पना से उद्भूत है अन्यथा इसका ज्ञात अवश्य उपलब्ध होता।

हास्य चूड़ामणि प्रहसन :

यह प्रहसन तत्कालीन समाज की विकृतियों लक्ष्यों दृष्टान्तों, परवर्षों एवं प्रवृत्तियों का झण्डाफोड़ करनेवाला उत्तम रूपक है। इसमें शिव से सम्बन्धित नान्दी पाठ के उपरान्त सूत्रधार रात्रि के अत्यधिक बीत जाने पर पारिपाश्वर्यक द्वारा नीलकण्ठ यात्रा महोत्सव पर आये हुए महाराज परमर्दिद का अभिनय सम्बन्धी आदेश उसे सुनाता है इसी समय नटों को तैयार किया जा रहा है।

नेपथ्य से कपटकेलि को दूती के द्वारा गीति गायी जा रही है। रंगमंच पर अलसाई हुई कपटकेलि मदिरा की धारा के सदृश सूर्य के प्रथम किरणागमन को देख रही है। वह प्रभातकालीन मदिरा की बड़ी मधुर समझती हुई उसे पान करना चाहती है। उसी समय चेतो उसे आभूषणों की चोरी को सूचना देती है। कपटकेलि सोचती है क्या मदिरा किछ में बदल गयी जो मैं मरने हुई सोचती रही। दरवाजा भी नहीं तोड़ा गया, तो निश्चय ही कलाकरण्डय जुआरी के प्रति अनुरक्त यह मेरी पुत्री का कार्य होगा। वह नाम बतानेवाले ज्ञानो के पास जाने का निश्चय कुसुमिका से व्यक्त करती है इसे वह केवली ज्ञान में निपुण ज्ञानराशि से प्रकाशित करायेगी। इसी समय निद्रा रूपिणी सर्पिणी से डसा हुआ मुदगरक कुसुमिका के द्वारा जगाया जा रहा है। मदिरा रखने की बात कहने पर वह उठता है। कपटकेलि इससे सम्पूर्ण धन के चोरी चले जाने की बात बताती है जिसे सुनकर वह चोर को शाबासी देता है और अम्बा के प्रति मौखिक सहानुभूति प्रदर्शित करता है। प्रतिकार के लिए कहने पर वह व्यंग्य युक्त ऊटपटाँग शब्दावली का प्रयोग करता है जिससे क्रुद्ध होकर कपटकेलि उससे मुँह बन्द रखने के लिए कहती है। अतः रूष्ट हो वह उसके साथ न जाने का निर्णय करता है, किन्तु मदिरा महोत्सव की बात सुन प्रसन्न होकर वह वसन्तकालीन शोभा का वर्णन करता है जो कपटकेलि को अच्छा नहीं लगा। वह रुककर उससे ज्ञाननिधि का पता लगाने के लिए कहती है। वापस आकर दो मुँड़े हुए शिरवालों की आपस में वाक्कलह करने की बात बताता है।

अनन्तर रंगमंच पर नाटकीय मुद्रा में शिष्य को पढ़ाते हुए ज्ञानराशि दिखाई पड़ते हैं। ज्ञानराशि उससे श्लोक कण्ठस्थ होने की बात पूछता है। शिष्य गुरु का नाम लेकर उदरस्थ हो गया है ऐसा कहता है। गुरु उससे गुरु का नाम नहीं लेना चाहिए ऐसा बताता है। शिष्य - क्या गुरु का नाम लेने से पाप लगता है ? वह पूछता है फिर पहाड़ों का नाम क्यों लेते हैं ज्ञानराशि- विद्यादान आदि से गुरु होते हैं भारी होने से नहीं। शिष्य-

उससे श्लोक उद्धृत हो जाने की बात बताता है तथा श्लोक में मारो जन का ध्यान करना चाहिए- ऐसा कहता है। अतः ज्ञान राशि क्रुद्ध हो जाता है। शिष्य घृषीतल पर लिखे गये श्लोक को दिखाता है। शिष्य तो ददेश्य श्लोक पाठ करते हुए 'षाण्डुरेकाक्ष' शब्द का उच्चारण करता है। एक आँख में फूल होने से गुरु उसे सुन क्रुद्ध हो जाता है और मारना चाहता है जिसके कारण शिष्य घला जाना चाहता है किन्तु सम्पूर्ण गोपनीय रहस्यों को जानने वाला समझ ज्ञानराशि उसे रोकता है और पुनः पढ़ाता है, किन्तु उसे कठिन समझ आचार्य से धन प्रदान करनेवाली केवली विद्या सिखाने की बात करता है। आचार्य उसे उससे विरत रखना चाहता है। वह उस विद्या के अगुम परिणामों को गिनाता है शिष्य उसे उस विद्या को न जाननेवाला एवं उसके गुप्त रहस्यों को न प्रकट करनेवाला स्वयं को बताता है। अन्ततः आचार्य उसे केवली विद्या का रहस्य बताता है। इसी समय कपटकेलि और मुद्गरक रंगमंच पर प्रवेश करते हैं। मुद्गरक उस स्थान को मघपान करने योग्य बताता है जिसे सुनकर कपटकेलि क्रुद्ध हो जाती है। वे दोनों आगे बढ़कर आचार्य को प्रणाम करते हैं। कपटकेलि आचार्य से चोरी गये आभूषणों को ज्ञान शक्ति से पता लगाकर दिला देने की प्रार्थना करती है। वह केवली विद्या की पुस्तक शिष्य से माँगाकर अँगूठी से उसकी पूजा कराता है और अँगूठी को भिक्षुओं में बाँटने के लिए कहता है, पुनः ग्रह कुण्डली लिखने लगता है। वह कौण्डिन्य नामधारी शिष्य से चर्चा करने के लिए कहता है जिसे सुन मुद्गरक क्रुद्ध हो जाता है। ज्ञानराशि उसे समझाता है कि यह तो चर्चा है फिर नाटकीय शैली में जोकरों की तरह गुरु शिष्य वार्तालाप करते हैं। स्वर्णमानुसार कपटकेलि को चोरी का अभिमुक्त समझता है किन्तु मुद्गरक के हँसने पर कोकिल और पारावत का नाम बताता है। कपटकेलि मुद्गरक के पास चली जाती है।

द्वितीय अंक में कलाकरण्डक के लिए मन्त्र जाप कर ज्ञानराशि और कौण्डिन्य सूर्य की किरणों से संतप्त उद्यान में प्रवेश कर एक अशोक के नीचे बैठ जाते हैं उसी समय वहाँ उद्यान में काम संतप्त मदन सुन्दरी और उसकी घेटी को आता हुआ देख ज्ञाननिधि वहाँ से चले जाने का अभिमत व्यक्त करता है

किन्तु कर्णप्रिय वार्ता को सुनकर शिष्य वहाँ से नहीं हटना चाहता है। मदन सुन्दरी घेटी को गले लगाकर घूतकार की प्रतीक्षा करती है। घेटी उससे कहती है कि आभूषणों को घेटी कपटकेलि के पास पहुँच गयी है। आचार्य और शिष्य मदन सुन्दरी को देख कामपीड़ित हो जाते हैं। इस ज्वर के परिहार के लिए कौण्डिन्य से लेखन सामग्री मँगा वह मन्त्र बीज की रचना कर चन्दन के लेप से गोला बनाने के निमित्त उसे आदेश देता है। कौण्डिन्य उसमें लिखित मदन सुन्दरी का नाम काटकर कपटकेलि का नाम लिख देता है, जिसे आचार्य धारणकर लेता है। उसके पीपल के वृक्ष पर चढ़ जाने पर पूजा की सामग्री सहित कपटकेलि आती है। वह धन प्राप्ति की सूचना देती है तथा अभिसार के लिये कसैले वस्त्र का परित्याग कर हरि चन्दन लगाने का आग्रह करती है। उपाध्याय उसे डण्डे से मारना चाहता है उसी समय उसे दूँदते कोकिल और पारावत आ जाते हैं। प्रार्थना करने पर ज्ञानराशि रक्षार्थ कपटकेलि के सुझाव पर समाधि लगाने का ढोंग करता है। क्रोधयुक्त वे दोनों उसे बावड़ी में फेंकने का निश्चय करते हैं फिर पीपल के पेड़ में लटकाने का निर्णय लेते हैं, जिससे यह खेचर सिद्धि का अनुभव करे।

पीपल के वृक्ष से उतरकर उद्यान रक्षक का अभिनय करनेवाले कौण्डिन्य को कोकिल और पारावत पहचानकर पकड़ लेते हैं। कौण्डिन्य द्वारा ज्ञानराशि के मर जाने पर खजानों की अप्राप्ति की चर्चा करने पर वे दोनों धन प्राप्ति के लिए उसे छोड़ देते हैं और क्षमा वाचना करते हैं। वह शिष्य से खजानों के निमित्त जब टिप्पणी मँगवाता है और उसका रस सबकी आँखों में लगवाता है स्वयं अपने तथा शिष्य की आँखों में भी लगाता है। सभी की आँखें अत्यन्त तीव्र दुखने लगती हैं। ज्ञानराशि कोकिल और पारावत से सरोवर के बारे में पूछता है वे दोनों मदनोद्यान में स्थित सरोवर के बारे में बताते हैं। वे सब रेंगते हुए परस्पर हास परिहास करते हुए आगे बढ़ते हैं। कपटकेलि मदनसुन्दरी का नाम लेकर रोने लगती है। उसी समय वहाँ पान गोष्ठी में स्थित मदन सुन्दरी तथा कलाकरण्डक पास पहुँच जाते हैं।

कपटकेलि मदन सुन्दरी को गले लगाकर रोने लगती है। कलाकरण्डक ज्ञाननिधि से इस सबके बारे में पूछता है १ उसी समय मुद्गरक और कुसुमिका बावड़ी से जल लाती है जिससे सभी लोग आँख और मुँह धुलते हैं। कपटकेलि मदन सुन्दरी का मुँह छूमती है। ज्ञाननिधि कलाकरण्डक को बताता है कि किसी का कोई दोष नहीं। यह उजाना प्राप्त करने के लिए नेत्रांजन लगाया गया था, जो भूलवसा कुछ दूसरा हो निकला। अनन्तर भरतवाक्य के साथ प्रहसन समाप्त हो जाता है।

आचार्यों के द्वारा प्रदर्शित शास्त्री लक्षणों के अनुसार वत्सराज का यह रूपक प्रहसन कहा जायेगा। इसकी कथा कवि की कल्पना से प्रादुर्भूत है। वत्सराज ने इस प्रहसन में जिस तरह की सामाजिक स्थिति का चित्रण किया है निःसन्देह इस तरह के चित्रण की प्रेरणा चन्देल शासनाश्रित कवि कृष्ण मिश्र के प्रबोध चन्द्रोदय नामक से मिली, जिसमें तत्कालीन सामाजिक धार्मिक पतिततावस्था का अनुपम चित्रण किया गया है। साधु आचार्यों एवं पाण्डित्यों के आडम्बरपूर्ण दैनिक जोधन के अंश को वत्सराज ने अधिकल रूप से कृष्ण मिश्र के प्रबोध चन्द्रोदय से लिया है।

अध्याय 2
रूपकों के कथावस्तु को लोक धर्मिता

नाट्य के विविध रूपों को कथा-वस्तु के सम्बन्ध में विवेचन करते हुए ने प्रकृत और उत्पाद्य- दो प्रकार की कथावस्तु का निर्देश किया है। दोनों प्रकार की कथावस्तु लोक वृत्तान्तकथात्मक हो होनी चाहिए, इसमें कोई संशय नहीं। किन्तु जब एक कथावस्तु को नाटकीय संविधान में ढाला जाता है, तो हमें स्पष्टतः उसमें दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं। जिन्हें स्वयं भरत ने 'लोक धर्म' तथा 'नाट्य धर्म' नाम दिया था।¹ विद्वत् लोक स्वभाव का अनुकरण, बिना कोई परिवर्तन किये हुए स्वाभाविक लोक वार्ता लोक व्यवहार से युक्त, कला कौशल से रहित, स्वाभाविक अभिनय से युक्त और विविध वर्गों के स्त्री-पुरुष पात्रों से युक्त नाटक को भरत ने लोकधर्म नाट्य कहा है।² कथावस्तु भी जब लोक से ग्रहण की गयी हो, उसमें लोक के कार्यों, व्यवहारों का बिना किसी झोडा-कौशल के अभिनय किया गया हो, तो वह लोक धर्म होता है।

नाटकों में अपने समय के प्रतिष्ठित प्रेमाख्यान या युद्धाख्यान प्रमुख विषय होते हैं। धार्मिक आख्यान भी बहुत लोकप्रिय होने के कारण लोक नाट्यों में अपना विशेष स्थान रखते हैं। इसी प्रकार गीति तत्त्व लोक नाट्यों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। क्योंकि गीति एवं संगीत जनमानस की सहज आकृष्ट कर लेता है। हास्य तो लोक नाट्य का प्राण है, बिना इसके कोई नाट्य पूरा नहीं होता। लोक नाट्य की ये प्रवृत्तियाँ सार्वकालिक और सार्वदेशिक हैं। 'अभिराम शाकुन्तलम्' की हो लीजिये, उसमें शलोकी की भरमार, विद्वत् की उपस्थिति, दुष्यन्त शाकुन्तला का प्रेमाख्यान और दुष्यन्त की वीरता, इन सभी का इस नाटक में सुन्दर समन्वय है, जो इस नाटक के

1. नाट्य शास्त्र : 6:25

2. स्वभावोपगतं शुद्धतत्त्वचिह्नं तथा लोकवार्ताश्रयो पेतमंगलीना विवर्जितम् ।
स्वाभाभिन्नयोपेतं नाना स्त्रीपुरुषाश्रयम् । यदोक्षां मधेन्नाट्यं लोकधर्मोति
तात्स्युता ।

लोकधर्मों स्वल्प को भ्रूलोभाँति पुष्ट करता है। भाषा भले हो संस्कृत है, और नान्दो, विष्कम्मक, सन्ध्याँ, अर्थ प्रकृतियाँ आदि सभी नाट्यशास्त्रीय ग्रंथियों को इसमें संजोया गया है, फिर भी मूलतः शकुन्तलोपाख्यान एक प्रेमाख्यान है, जिसको विविध रूपमयी कथाएँ अनेक लोक कथाओं के रूप में आज भी प्रचलित है।

आधुनिक विद्वानों ने नाट्य को लोक धर्मों प्रवृत्तियों पर गहराई से विचार किया है। श्याम परमार ने लोक धर्मों नाट्यों को विशेषताएँ-११॥ भाषा एवं संवाद ॥२॥ कथानक ॥३॥ पात्र सन्निवेश ॥४॥ चरित्र-चित्रण ॥५॥ लोक वार्ता का समावेश ॥६॥ रूप योजना ॥७॥ संगीत योजना ॥८॥ हास्य ॥९॥ मंच व्यवस्था के आधार पर निर्धारित किये हैं। लोक नाट्यों के मन्त्र प्रायः कुले आकाश के नीचे, बिना किसी यवनिका आदि व्यवस्था के हुआ करते हैं।

संस्कृत नाटक न तो विरुद्ध रूप से लोक नाट्य हैं, और न उनका लेखक लोक-कवि हो है क्योंकि संस्कृत का जन-सामान्य के साथ उतना प्रगाढ़ सम्बन्ध कभी नहीं रहा, जितना कि एक लोक भाषा का होता है। संस्कृत नाटककार तो मूलतया एक वैयाकरणिक और शास्त्रज्ञ होता है, फिर भी वह इसी लोक का प्राणी होने के नाते, लोक से बहुत दूर नहीं होता। इस दृष्टि से संस्कृत नाटकों का लोकधर्मों पक्ष निरूपित करते समय हमें विशेष सावधानी बरतनी होगी।

रूपककार वत्सराज स्वयं एक मन्त्र और अनेक कवियों का विद्वान था। उसके रूपकों को लोक मूलकता एवं कथा वस्तु को लोक-धर्मिता का आंकलन करते समय हमें इस तथ्य का विशेष ध्यान रखना होगा कि वह मूलतः संस्कृत का शिष्ट कवि था, किन्तु फिर भी उनके साहित्य में अन्य संस्कृत कवियों की अपेक्षा लोक धर्मों प्रवृत्तियों का आधिक्य परिलक्षित होता है। हम यहाँ उनके प्रत्येक रूपक को कथावस्तु को लोक धर्मिता का संक्षिप्त आंकलन करेंगे।

किरातार्जुनीयम् व्यायोग :

‘किरातार्जुनीयम् व्यायोग’ को कथावस्तु का मूल स्रोत, सोधे-सोधे

‘महाभारत’ है तथा वत्सराज से पूर्व भी, इस विषय को भारवि आदि कवियों ने अपने काव्यों का विषय चुना था। फिर भी कथानक की मूल प्रकृति इसे विशुद्ध लौकिक-आख्यान की कोटि में पहुँचा देती है। दैवी शक्तियों की प्राप्ति करने की इच्छा कोई महाभारत अथवा पौराणिक युग की हो देन नहीं है अपितु अफ्रीका जैसे सुदूरवर्ती देशों की जंगली जातियों में आज भी इसके लिए विविध प्रकार के अनुष्ठान किये जाते हैं। दिव्य शक्ति की प्राप्ति के लिए या किसी मनोरथ पूर्ति के लिए एक व्यक्ति द्वारा कोई तपस्या अथवा अनुष्ठान किया जाना, उस अनुष्ठान में आये हुए किसी प्रकार के विघ्न को आराध्य द्वारा उपस्थित किया जाना, और उस पर वाद-विवाद अथवा युद्ध द्वारा विजय प्राप्ति के अनन्तर अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति कर लेना, इस आख्यान की प्रमुख कथानक रूढ़ियाँ हैं। इन कथानक रूढ़ियोंवाले अनेक आख्यान लोक साहित्य में मिलेगे। भक्ति सम्प्रदाय के अन्तर्गत भी ऐसे भक्तों की अनेक कथाएँ प्रचलित हैं।

असमी लोक साहित्य में एक बहादुर आदिवासी की कहानी है, जिसमें एक आदिवासी जंगल में जाता है। दूसरे कबोले पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से अपने इष्टदेव ‘आगो’ की पूजा करता है। ‘आगो’ उसकी शक्ति की परीक्षा लेने के विचार से एक शेर के रूप में तपस्या करते हुए आदिवासी पर हमला करता है, किन्तु वह आदिवासी उसे वास्तविक शेर समझकर भाले से उस पर प्रहार करता है। काफी देर युद्ध के पश्चात् शेर अपने वास्तविक रूप में प्रकट होकर, प्रसन्न होकर उसे एक भाला प्रदान करता है, जिसकी सहायता से वह दूसरे कबोले पर विजय प्राप्त करता है।

इस कहानी की सभी कथानक रूढ़ियाँ किरातार्जुनीयम् व्यायोग के कथानक रूढ़ियों से साम्य रखती हैं। अतः प्रतीत होता है कि महाभारत काल में किसी ऐसी ही लोक प्रचलित कहानी से कथानक अभिप्रायों को ग्रहण कर किरातार्जुनीयम् के कथानक का ताना-बाना बुना गया होगा।

समुद्र मथन समवकार की कहानी पौराणिक होते हुए भी विशुद्ध रूप से

लौकिक है। जैसे तो पुराण स्वयं ही अपने आप में लोकाख्यान के विषयो हैं। अतः उनकी अधिकांश कहानियाँ लोक कहानियों के रूप में संकलित की गयी हैं, फिर भी कथानक प्रकृति के आधार पर उनका विभाजन पौराणिक, ऐतिहासिक, रूपकात्मक एवं विद्वद् लौकिक वर्ग के अन्तर्गत किया जा सकता है। विद्वद् लौकिक वर्ग के अन्तर्गत, प्रेमाख्यान, पौर-गाथात्मक आख्यान और पशु-पक्षियों की कहानियाँ आती हैं।

समुद्रमन्थन की कहानी उस कौरवी लोक कथा से विल्कुल मिलती जुलती है जिसमें दो गाँवों के मुखिया एक छिपी हुई सम्पत्ति का पता लगाने के लिए जंगल में जाकर कुँआ खोदते हैं। कुँआ खोदते-खोदते असीम निधि के ऊपर बैठा काला सर्प निकलता है, जिससे सभी लोग भयभीत होकर भाग जाते हैं। किन्तु, एक साहसी व्यक्ति उस सर्प को मार देता है फिर उस सम्पत्ति के बँटवारे को लेकर झगड़ा होता है, तब एक प्यारा बोंच बचाकर, उन लोगों के बीच सम्पत्ति बाँटने का नाटक करती है। इस कौरवी लोक कहानी में मूल कथानक रुढ़ियाँ निम्नलिखित हैं—

§1§ दो पड़ोसी गाँव के निवासी, जिनमें एक गाँव के निवासी जाट हैं और दूसरे ठाकुर।

§2§ सम्पत्ति की खोज में दोनों ही बियावान जंगल में जाकर सम्मिलित रूप से कुँआ खोदते हैं।

§3§ इस कुँए में विषधर काला सर्प निकलता है, जिसे देखकर दोनों लोग भाग जाते हैं।

§4§ एक साहसी व्यक्ति इस सर्प को मार डालता है।

§5§ फिर सम्पत्ति के बँटवारे को लेकर दोनों गाँव के व्यक्तियों में झगड़ा होता है।

§5§ अनन्तर एक प्यारा सम्पत्ति बँटवारे का नाटक करती है।

समुद्र मन्थन की कहानी भी इसी प्रकार दो समुदायों के बीच की कहानी है। एक समुदाय में देवता हैं तो दूसरे में असुर। दोनों मिलकर ही रत्न प्राप्ति के लिए समुद्र मन्थन करते हैं। कौरवी लोक कथा में समुद्र मन्थन की जगह कुँआ

खोदने की बात है। सर्वप्रथम हलाहल निकलता है, जिससे देव और असुर दोनों संतुष्ट हो जाते हैं। शिव हलाहल पीकर विघ्न दूर कर देते हैं। छोटे-छोटे रत्नों के बँटवारे को लेकर कोई झगड़ा नहीं होता। यह कथानक रुद्र और वीर लोक कथा में अप्राप्त है। अन्त में अमृत प्राप्ति के लिए देवता और असुरों में युद्ध होता है। वत्सराज ने इस समझकार में वस्तुओं के वितरण का कार्य अपने मूल रूप से पृथक् समुद्र के हाथों सम्पन्न कराया है।

‘रुक्मिणी हरण ईहामुग’ की कहानी भी एक प्रेमाख्यान है, जिसमें कोई नायिका अपने माता पिता की इच्छा के विपरीत अपने मन से किसी नायक का वरण करती है, और उसके पास इस आशय का प्रेम संदेश भेजती है, जिसे पाकर नायक अपनी प्रेमिका का हरण कर लेता है तथा प्रतिरोध होने पर विजय प्राप्त कर लेता है। वत्सराज ने शास्त्रीय नियमों को दृष्टिगत रखते हुए, युद्ध का दृश्य इस ईहामुग में चित्रित नहीं किया। होर-रांझा, आल्हा और माल्दे रानी, संयोगिता और पृथिवीराज, पद्मावती के प्रेमाख्यान इसी कोटि के आख्यान हैं।

त्रिपुरदाह डिम का कथानक देवासुर संग्राम का एक दूसरा ही रूप है। इस कथानक में अतिमानवीय और अतिप्राकृतिक तत्वों का सन्निवेश, इसे लोक-कथानक के अधिक नजदीक पहुँचा देता है। यद्यपि अभी तक हमारी दृष्टि में इस तरह की कोई अन्य लोक कथा नहीं आयी, जिसके कथानक अभिप्रायों को त्रिपुरदाह के कथानक अभिप्रायों के साथ तोलन किया जा सके। इस कथानक का संस्कृत साहित्य में दार्शनिक भाव लेकर अनेक व्याख्याएँ लिखी गयीं, किन्तु लोक मानस पर ध्यान में रखकर कोई व्याख्या हमारे सामने नहीं है।

‘कर्पूर चरित भाण’ और ‘हास्यचूडामणि प्रहसन’ दोनों की कथावस्तु कवि कल्पित एवं लोकवृत्त के अधिक नजदीक है। कर्पूर चरित भाण में कर्पूर नायक पात्र, उक्ति, प्रत्युक्तियों के माध्यम से अपने कल्पित मित्र चन्दनक के साथ विलासती एवं अन्य वस्तुओं तथा जुआरियों आदि के सम्बन्ध में बातलाप करता है। इसमें वैसा संस्कृति का खासा चित्र उपस्थित होता है।

धूर्त केयागमन ठगो, चरित्रहीनता आदि का धिनीना, किन्तु वास्तविक रूप हमारे सामने आता है। अपढ़ एवं सामान्य लोगों के बीच में धूर्त ज्योतिषियों बुजारियों, पाखण्डियों, चरित्रहीन गुस्त्रों के नीचता पूर्ण चरित्र के ऊपर चुटोले व्यंग्य हास्य छूडामणि में देखने को मिलते हैं। इनसे तत्कालीन लोक जीवन की विकृतियों का तो पता चलता ही है साथ ही वास्तविक लोक धरातल के स्तर का भी पूर्ण परिचय मिल जाता है। यद्यपि लोक संस्कृति का अर्थ यह कदापि नहीं है कि उसमें धूर्तों और लम्पटों का बाहुल्य हो, किन्तु यह बात भी किने से छिपी नहीं है कि मोले-भाले जनमानस को आस्था और निष्ठता का दुस्प्रयोग करने में धूर्त पोछे कभी नहीं रहते। भाण और प्रहसन दोनों ही नाट्य विधायें विबुध लोकमूलक है और इनमें नकल उतारने की हास्यात्मक लोक प्रवृत्ति का प्राधान्य होता है।

अतः वत्सराज के सभी रूपकों की कथा वस्तु लोक धर्मिता से ओत-प्रोत है। इसमें कोई संशय नहीं है।

अध्याय-३

**वात्सराज के स्वर्णों का काष्ठास्त्रोय विवेचन और
उसकी लोक मूलकता**

वत्सराज की रचनाओं के रूप में आज हमें छः रूपक प्राप्त होते हैं—
 कर्पूरचरितभाण, किरातार्जुनीयम् व्यायोग, हास्ययुडामणि प्रहसन, त्रिपुरडाह
 डिम, रुक्मिणीहरण, ईहामृग और समुद्रमन्थन समवकार। यह ध्यान देने योग्य
 तथ्य है कि वत्सराज ने रूपक के प्रमुखतम भेद—जिसे काव्यरसिकों ने 'काव्येषु
 नाटकं रम्यम्' कह कर काव्यभेदों में प्रमुखतम् स्थान दिया हो, उसे अनदेखा
 कर अन्य गौण और अपेक्षाकृत कम प्रचलित रूपकों को अपनी लेखनी का विषय
 बनाया। इसकी पृष्ठभूमि में वत्सराज का क्या उद्देश्य रहा होगा, इसकी
 प्रत्यक्ष जानकारी तो उनके रूपक-साहित्य से नहीं हो पाती, किन्तु तत्कालीन
 साहित्यिक प्रवृत्तियों और परिस्थितियों से कुछ अनुमान अवश्य लगाया जा
 सकता है जिनका उल्लेख इस लघुग्रन्थ की पूर्वपीठिका में हो किया जा चुका
 है। इन सभी रूपक-भेदों का अस्तित्व तो भरत के काल में भी था, किन्तु
 उनकी लोकप्रियता कदाचित् अधिक न थी। भाण और प्रहसन दसवीं शताब्दी
 के बाद ही लोकप्रिय अधिक बन सके। व्यायोग, डिम, ईहामृग और समवकार
 रूपकों का अस्तित्व भी नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों तक सीमित था। भास को
 छोड़कर अन्य किसी संस्कृत कवि ने रूपकों के इन भेदों को अपने काव्यों के लिए
 नहीं चुना। इस दृष्टि से इन अप्रचलित रूपक-विधाओं का वत्सराज द्वारा
 चुनाव बदलती हुई साहित्यिक अभिरुचि का प्रतिनिधित्व करता है। हम यहाँ
 इन रूपक-विधाओं के काव्यशास्त्रीय विवेचन के साथ-साथ उनकी लोकमूलकता
 पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

भाण :

'भाण' शब्द 'भण्' धातु से करण अर्थ में घञ् प्रत्यय लगाकर बनता है।
 इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है - 'भण्यते व्योमोक्त्या ॥ आकाशं भाषितेन ॥ नन्वे
 त्वपरवृत्तं प्रकाशयतेऽत्रेति भाणः' अर्थात् जिसमें नायक आकाश
 त्ववृत्त और परवृत्त का प्रकाशन करता है।¹ एतदतिरिक्त यह शब्द 'भण्'

धातु के निजन्त रूप 'भाणि' से भी बनाया जा सकता है। तब इसका अर्थ 'कहलवाना' होता है, क्योंकि 'भाणि' धातु का अर्थ ध्वनि विशेष को नकल है। आचार्य अभिनवगुप्त ने इसे 'भाणि' धातु से ही निष्पन्न माना है।¹

'भाण' के लक्षण के विषय में आचार्यों में प्रायः मतैक्य है, केवल रस प्रयोग के विषय में किंचित् मतभेद है।

आचार्य धनंजय² के अनुसार भाण वह रूपक है जहाँ कोई चतुर तथा बुद्धिमान पण्डित विट अपने स्वानुभूत अथवा परानुभूत धूर्तचरित का वर्णन करे। इसमें एक पात्र के द्वारा उक्ति-प्रयुक्ति का सन्निवेश, आकाश भाषित के^{द्वारा} किसी से भाषण या कथोपकथन करता दिखाया जाता है। कथावस्तु कवि कल्पित होती है। इसमें मुख और निर्वहण सन्निध्याँ होती हैं। तथा भारतीय वृत्ति की प्रधानता और एक अंक की योजना होती है। इसमें सौभाग्य तथा शौर्य वर्णन कर शृंगार तथा वीर रस को सूचना दी जाती है।

भारत के नाट्यशास्त्रानुसार भाण एकांकी होता है।³ धूर्त चरित के आधार पर दो प्रकार का होता है— आत्मानुभूतासी एवं परस्त्रय वर्णन।⁴ अभिनव भारती के अनुसार विट का चरित्र हास्योचित होना चाहिए और

1. अभिनव भारती {नाट्यशास्त्र} गा० ओ० सी० : पृ० 449

2. भाणस्तु धूर्तचरितं स्वानुभूत परेण वा ।

यवोप वर्णयेदको निपुणः पण्डितो विटः ॥

सम्बोधनोक्ति प्रत्युक्तो कुर्यादाकाशभाषितैः ।

सूचयेद्द्वोर शृंगारौ शौर्यं सौभाग्यं संस्तवैः ॥

भूयसा भारती वृत्तिरेकाके वस्तु कल्पितम् ।

मुख निर्वहणे सांगे लास्यांगानि दशापि च ।

दश० 3/49-51

3. नाट्यशास्त्र : 20/114

4. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : 20/112

इसमें धिन्मय ¹ या अत्युक्त रस वर्णित होना चाहिए। आचार्य हेमचन्द्र ² तथा रामचन्द्र ³ ने बताया कि भाषा की रचना जन साधारण के लिए होती है। धर्मजय ने भाषा में भारतीय छुट्टि के साथ साथ वीर रस शृंगार रस पर जोर दिया, ⁴ जबकि नाट्य दर्पणकार ने इसमें शृंगार रस को प्रधानता दी एवं वीर तथा हास्य रस को गौण स्थान दिया। ⁵ चिन्मयाथ ने शृंगाराधिन्य देखकर इसमें कैथिकी छुट्टि का निर्देश किया है, ⁶ जो स्पष्टतः भरत के विचार है। गारदात्मय ने भाषा में सम्मान शृंगार रस को सत्ता स्वीकार की है। ⁷ उसने भाषा के दश तात्प्रांग- गेय पद, त्रिधा पादय, आतोम, विमू., प्रच्छेदक, पुष्प गण्डिका विमूदक, तेन्ध्य, उत्तमोत्तमक तथा माध्य माने हैं। ⁸

भाषा कई अवस्थाओं में पाश्चात्य पद्धति के मोनो एक्टिंग से साम्य रक्ता है। ⁹ भाषा के द्वारा कवि सामाजिक दुरावस्थाओं पर व्यंग्य करता है। ¹⁰ इसके वाक्य सरल होते हुए भी व्यंग्य से परिपूर्ण होने के कारण गूढ़ होते हैं। ¹¹ यद्यपि भाषा का विषय सामान्यतः नैतिक दृष्टि से उत्कृष्ट नहीं है तथापि इसमें साहित्यिक गुण है। विदग्धपूर्ण गोष्ठियों में बोस बात को सुटोली संस्कृत का नमूना इन भाषाओं में मिलता है, जिते संस्कृत का नियोजन हुआ अमृत

1. नाट्यशास्त्र : [नाट्यशास्त्र] भाग 2 : पृष्ठ 453
2. काव्यानुशासन : पृष्ठ 325
3. नाट्य दर्पण : पृष्ठ 127
4. दश रूपक : 3/49-51
5. नाट्य दर्पण : पृष्ठ 132
6. साहित्य दर्पण : परि० 6 : पृष्ठ 227-230
7. भाषा प्रकाशन : 8:244
8. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : 8:244
9. भोला शंकर व्यास : दशरूपक
10. भोला शंकर व्यास : दशरूपक : पृष्ठ 159
11. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : 159

कहा जा सकता है।¹

कवि वत्सराज द्वारा विरचित कर्पूर चरित शास्त्रीय लक्ष्णों से परिपूर्ण उत्तिम भाण है। इसमें कर्पूरक नामक पात्र विदग्ध विट है। वह आकाशभाषित द्वारा घूत कोड़ा तथा वेश्याओं के साथ उसकी प्रणय लीला का मनोहर वर्णन करता है। इसमें वीर रस-सूचक शौर्य एवं शृंगार रस सूचक सौभाग्य का सन्निवेश है। कहीं-कहीं अद्भुत रस की भी योजना है। यह एकांकी भारती वृत्ति प्रधान है। कथा वस्तु कवि कल्पित एवं स्वानुभूतसांसी है। अकेले बात-चोत द्वारा कर्पूरक विट कल्पित मित्र चन्दनक के साथ आकाश भाषित द्वारा स्वयं प्रश्नकर उत्तर देकर उक्ति प्रत्युक्ति का प्रयोग करता है। नीलकण्ठ यात्रा महोत्सव पर अभिनित यह रूपक शास्त्रीय दृष्टि से सफल भाण है।

व्यायोग :

व्यायोग शब्द का अर्थ 'व्यायुज्यन्तेऽस्मिन् बहवः पुरुषाः' इति² अर्थात् जिसमें विविध व्यक्ति अभिनय करते हैं, उसे 'व्यायोग' कहते हैं। भरत मुनि ने 'बहवस्तत्र च पुरुषाः' लिखकर उसमें केवल अनेक पुरुष पात्रों की उपस्थिति स्वीकार की है। अभिनव गुप्त के अनुसार युद्ध में अनेक पुरुषों के नियुक्त होने के कारण इसे व्यायोग कहा जाता है।³ व्यायोग के लक्षण के विषय में नादयाचार्यों में प्रायः मतैक्य है, कहीं-कहीं थोड़ा सा अन्तर है।

आचार्य धनञ्जय के अनुसार व्यायोग की कथा-वस्तु इतिहास प्रसिद्ध किसी प्रसिद्ध उद्भूत व्यक्ति पर आश्रित होती है। इसमें गर्भ तथा विमर्श सन्धियाँ नहीं होती हैं। रसों की दोषित डिम की तरह होती है अर्थात् हास्य एवं शृंगार से भिन्न इसमें रस हो सकते हैं। इसमें युद्ध का वर्णन तो होता है, किन्तु वह स्त्री प्राप्ति के निमित्त नहीं होता। यह एकांकी होता है।

1. अग्रवाल, वी०एस० : चतुर्माणी भूमिका-3-4

2. दश रूपक : 3/60-61 अवलोक टीका

व्यापाते युद्ध प्राये नियुज्यन्ते पुरुषा यत्रेति व्यायोग इत्यर्थः ।

3. नादयशास्त्र अभिनव भारती : 18 : 924

इसको कथा एक दिन की होती है तथा पुस्तक पात्रों की संख्या अधिक होती है।¹

अभिनवगुप्त के अनुसार देवता, नृपति अथवा ऋषि व्यायोग का नायक नहीं होना चाहिए।² आचार्य विश्वनाथ के अनुसार इसका नायक देव नहीं अपितु कोई राजर्षि होता है। इसमें व्यक्तिगत संघर्ष एवं रोषपूर्ण युद्ध वर्णित होता है।³ शारदातनय के अनुसार व्यायोग में पात्र संख्या दश से अधिक नहीं होनी चाहिए।⁴ सागरनन्दी के अनुसार यह 'अधिकन्या परिणययुक्त' होता है⁵ जिससे प्रतीत होता है कि किसी युग में व्यायोग में तापस कुमारियों का वर्णन होता रहा होगा। परन्तु धनञ्जय के व्यायोग का लक्षण ही किंचित् हेरफेर के साथ विद्वत्त्वर्ण में समाहित है।

शास्त्रीय विवेचनानुसार परीक्षण करने पर वत्सराज कृत 'किरातार्जुनीयम्' व्यायोग के लक्षणों पर खरा उतरता है। इसको कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध महाभारत के वनपर्व से उद्धृत है। इसमें अर्जुन धीरोद्भूत नायक है। रस सदैव

1. ख्यातेति वृत्तो व्यायोगः ख्यातोद्भूत नराश्रयः ।

होनो गर्भविमर्शाभ्यां दीप्ताः स्युर्दिमवद्रताः ॥

अस्त्री निमित्त संग्रामो जामदग्न्यजये यथा ।

एकाहा चरितैकांको व्यायोगो बहुभिर्नरैः ॥

दश10 : 3/60-62

2. नाट्यशास्त्र : 18/90 पर अभिनव भारती

3. साहित्य दर्पण : 6/231-33

4. नायकास्त्रि चतुष्पंच भवेयुर्न दशाधिकाः ।

भाव प्रकाशन : 8/248

5. सागरनन्दी : 'नाटक लक्षण रत्नकोश' : पृ0 265 : सं0 1972

दोप्ल रहता है। वराह के प्रसंग को लेकर अर्जुन और शिव के युद्ध का वर्णन है। सभी पात्र प्रायः पुरुष हैं। एक दिन की घटना का दृश्य एक अंक में वर्णित है। प्रमुख रस वीर है, रौद्र अद्भुत आदि सहायक रस हैं। आरम्भ की वृत्ति की योजना है। स्त्री पात्र का अभाव है तथा युद्ध का उद्देश्य स्त्री प्राप्ति नहीं अपितु दिव्य पाशुमत अस्त्र की प्राप्ति है।

प्रहसन :

प्रहसन शब्द 'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'हस्' धातु से 'ल्युट' प्रत्यय लगाकर बनता है। 'हस्' धातु के प्रयोग से स्पष्ट है कि इसमें हास, जिसका स्थायी भाव हास्य रस है- की इसमें मुख्य प्रवृत्ति है। नाटकों की कथावस्तु में हास्य योजना के अतिरिक्त, संस्कृत साहित्य में हास्य प्रधान रसों की भी परम्परा है, जिसे प्रहसन कहा जाता है।

आचार्य धनञ्जय ने प्रहसन की परिभाषा देते हुए लिखा है कि प्रहसन की कथावस्तु भाण की तरह कवि कल्पित और धूर्तचरितपरक होती है। इसमें मुठ तथा निर्वहण सन्धियाँ, भारती वृत्ति की प्रधानता तथा एक अंक की योजना होती है। यह शुद्ध, विकृत तथा संकर भेदों के कारण त्रिविध माना गया है। शुद्ध, प्रहसन में पाखण्डी, ब्राह्मण, नौकर-नौकरानियाँ और विटों आदि का जमघट होता है। इसमें वेश और भाषा के अनुस्यू चेषटारें प्रदर्शित की जाती हैं तथा इनके कथोपकथन हास्ययुक्त होते हैं। विकृत प्रहसन में नपुंसक, कंचुकी एवं तपस्वी- जो कामुक लोगों के वचन एवं वेश का प्रयोग करें-विद्यमान होते हैं। धूर्त व्यक्तियों से पूर्ण प्रहसन संकीर्ण प्रहसन कहलाता है। इस प्रहसन में हास्य रस, हसित, अपहसित, उपहसित, अवहसित, अतिहसित और विहसित इन छः भेदों में उपनिबद्ध होता है।¹

1. तद्वत् प्रहसनं त्रेधा शुद्ध विकृत संकरैः ।

पाखण्डि विप्रप्रभृति घेट घेटो विटाकुलम् ॥

घेषितं केषमाधामिः शुद्धं हास्य वयोऽनुवितम् ।

कामुकादिवयो केषैः षण्डकंचुकि तापसैः ॥

विकृतं, संकरादोध्या संकीर्णं धूर्त संकुलम् ।

रसस्तु भूयसा कार्यः षड्विधो हास्य एव तु ॥ दशरूपक : 3/54-56

नाट्यचार्य भरत ¹ ने तथा सागरनन्दो ² ने प्रहसन के शुद्ध और संकीर्ण दो भेद माने हैं। विश्वनाथ ने संकीर्ण प्रहसन में दो अंकों का होना आवश्यक बताया।³ शारदातनय ⁴ एवं रामचन्द्र ⁵ ने प्रहसन में एक अंक तथा मुख और निर्वहण सन्धि मानो है। शिगभूपाल ने भाण के तद्भा हो प्रहसन में अवगलित, अवस्कन्द, व्यवहार विप्रलम्भ, उपपत्ति, अनुत, विप्रान्ति, भय, गदगद वाक् और प्रलाप इन दश तत्त्वों की अनिवार्यता स्वीकार की है।⁶

कवि वत्सराज विरचित 'हास्य चूडामणि प्रहसन' दो अंकों का प्रहसन है। चूँकि सो0डो0 दलाल द्वारा सम्पादित रूपक षट्कम् में स्थित हास्य चूडामणि प्रहसन के पृष्ठ संख्या 132 पर श्लोक संख्या 25 के पश्चात् 'प्रथमोऽंकः' लिखा है। और उसी पृष्ठ से पुनः गद्य एवं पद्य भाग प्रारम्भ हो जाता है, अतः अनेक समीक्षकों ने इसे दो अंकों वाला माना है।⁷ इसको कथावस्तु कवि-कल्पित और धूर्तचरितपरक है। केवली विद्या का जानकार आचार्य ज्ञानराशि इसका नायक है। वह विभिन्न प्रकार के छल प्रपंच एवं मूर्खता पूर्ण क्रियाओं से अपना प्रयोजन सम्पादित करता है। इस प्रहसन में पाखण्डो एवं तपस्वियों के अहंकारपूर्ण जीवन का जोधन्त चित्रण है। बेया, घेत धूर्त आदि के वेशभूषा और चेष्टाओं के वर्णन इसमें उपलब्ध होते हैं। अतः यह संकीर्ण प्रहसन है। भारती वृत्ति एवं मुख तथा निर्वहण सन्धि का अत्यन्त सफलतापूर्वक इसमें सन्निवेश हुआ है। गुरु शिष्य के परस्पर संवादों से हास्य की अतिवृष्टि इस रूपक में हुई है।

1. नाट्यशास्त्र : 20/106

2. नाटक लक्षण रत्नकोष : पृ0 267/ 1972

3. साहित्य0 264-268

4. भाव प्रकाशिन : पृ0 247

5. सागरनन्दो : पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : पृ0 230

6. रसार्ण व सुधाकर : 3/270 : पृ0 173

7. इन्द्र शेखर : संस्कृत ड्रामा इट्स ओरिजिन एण्ड डिक्लेईन : पृ0 57/1967

डिम :

डिम शब्द 'डिम' संघाते धातु से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ नायकों का घात-प्रतिघात करना है। अतः डिम उस रूपक विधा को कहा जाता है जिसमें नायक का घात-प्रतिघात करना दिखाया जाय।¹ प्रायः सभी नाट्याचार्यों ने डिम का एक जैसा ही लक्षण किया है। द्वात्म्यकार के अनुसार डिम की कथावस्तु प्रसिद्ध होती है। केवल कैशिकी वृत्ति नहीं होती है। इसमें देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग आदि अथवा भूतन्पिशाच उद्धत सोलह नेता होते हैं। शृंगार व हास्य को छोड़कर बाकी सभी रसों का इसमें प्रदोषन होता है। अंगोरस रौद्र होता है। इसमें चार अंक होते हैं। विमर्श सन्धि को छोड़कर शेष चारों सन्धियाँ पाई जाती हैं। इसमें माया, इन्द्रजाल, युद्ध, क्रोध, उदुमान्ति आदि चेष्टाओं तथा चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहण का दृश्य दिखाया जाता है।²

रामचन्द्र गुणचन्द्र ने डिम में शान्त, हास्य एवं शृंगार का निषेध किया है।³ हेमचन्द्र ने विभिन्न प्रकार के विप्लव होने से डिम में डिम्ब और विद्रोह नामक दो भेद माने हैं।⁴

1. "डिम संघाते इति नायक संघात व्यापारात्मकत्वाद् डिमः"

दश० : 3/57 घ०टो०

2. डिमे वस्तु प्रसिद्धं स्याद् वृत्तयः कैशिकीं बिना ।

नेतारो देवगन्धर्व यक्ष रक्षो महोरगाः ॥

भूत प्रेत पिशाचाद्याः षोडशात्यन्तमुद्धताः ।

रसै हास्य शृंगारैः षडभिः दोषैः समन्वितः ॥

मायेन्द्र जाल संग्राम क्रोधोदुमान्तादि चेष्टितैः ।

चन्द्र सूर्योपरागैश्च न्याय्ये रौद्ररसे विनि ॥

चतुरङ्गचतुस्तां धिर्निविमर्शो डिमः स्मृतः ॥

दश० : 3/57-60

3. नाट्य दर्पण ॥ सं० नगेन्द्र ॥ : पृ० 233/196।

4. काव्यानुशासन : पृ० 317

शास्त्रीय दृष्टि से वत्सराज कृत त्रिपुरदाह उत्तम छिम्प है। इसकी कथा पुराण प्रसिद्ध है। शंकर ने त्रिपुरी का किस प्रकार विनाश किया, इसका वर्णन ही रूपक की कथावस्तु है। यह चार अंकोंवाला एवं रौद्र रस के परिपाक से युक्त है। राक्षस, देव, गन्धर्व- ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, यम, अग्नि, निर्ऋति, कुबेर, कार्तिकेय, वरुण, सूर्य, चन्द्र, शेष एवं हिम- उद्धत षोडश नायक हैं। माया, इन्द्रजाल, युद्ध, क्रोध, उद्विग्न आदि का वर्णन है। इसमें सात्त्विकता, आरम्भटी, व भारतीय सुक्तियाँ पाई जाती हैं।

ईहामृग :

‘ईहामृग’ शब्द का अर्थ- अलभ्य नायिका को प्राप्त करने की मृग के समान इच्छा।¹ उक्त मत का पुष्टीकरण आचार्य अभिनव गुप्त,² रामचन्द्र,³ एवं हेमचन्द्र⁴ ने किया है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार इसमें अनासक्त किसी विनाश दिव्य नाट्य का अन्वेषण होता है।⁵

ईहामृग के विषय में धनञ्जय ने लिखा है कि ईहामृग की कथा मिश्रित प्रकृत व कल्पित का मिश्रण होती है। इसमें चार अंक होते हैं। गर्भ व अवसर्ग सन्धियों को छोड़कर शेष दोनों सन्धियाँ होती हैं। नर तथा देवता के नियम से नायक व प्रतिनायक की योजना होती है। ये दोनों धीरोद्धत एवं इतिहास प्रसिद्ध होते हैं। प्रतिनायक ज्ञान की भ्रान्ति के कारण अनुचित कार्य करनेवाला होना चाहिए। यह किसी स्त्री को जो उसे नहीं चाहती है- भगाकर ले जाना चाहता है। इस तरह का श्रृंगारभास इसमें प्रदर्शित होना चाहिए। नायक व प्रतिनायक के विरोध की पूर्णता पर ले जाकर किसी बहाने से युद्ध की

1. मृगवदलभ्यां नायिकां नायको त्स्मिन् ईहते इति ईहामृगः

दश०: 3/72 पर धनिक की टीका

2. अभिनव भारती

3. नाट्यदर्पण : पृ० 131

4. काव्यानुशासन : पृ० 322

5. साहित्य दर्पण : 6/245-250 की वृत्ति। चौखम्भा, बनारस। हि० टीका: पृ० 517

ढालकर उसका निवारण होना चाहिए। तथा वधासन्न होने पर भी प्रतिनायक का वध प्रदर्शित नहीं होना चाहिए।¹

भरत ने ईहामृग में देवी नारो के लिए ही युद्ध का उल्लेख किया है।² शारदातनय ने कैशिको वृत्ति के अतिरिक्त तीनों वृत्तियाँ, कहीं-कहीं कैशिको वृत्ति को भी इसमें अंगोकार किया है। इसमें भय एवं वीर्य रस को छोड़कर सभी रसों तथा नायकों को संख्या चार पाँच छः तक मानो है।³ रामचन्द्र के अनुसार ईहामृग में केवल एक अंक और बारह नायक होने चाहिए।⁴ आचार्य विश्वनाथ ने इसमें एक अंक को ही स्वीकार किया है।⁵ वत्सराज लिखित रुक्मिणी ईहामृग में चार अंक हैं। इसमें येदिनरेश शिशुपाल को न चाहनेवालो दिव्य नारो रुक्मिणी का अपहरण श्री कृष्ण करते हैं। इसका वृत्त मिश्रित है। मुख, प्रतिमुख, निर्वहण सन्धियों का प्रयोग हुआ है। वृत्त मिश्रित है। रूपक में श्रीकृष्ण के कार्यों में देवी नियम का पालन हुआ है। नायक व प्रतिनायक धीरोदत कोटि के हैं। चतुर्थ अंक में शिशुपाल, बलराम, रुक्मो एवं श्रीकृष्ण का युद्ध को पूर्णता पर ले जाकर अद्यानक रोक दिया गया है। अतः यह रूपक ईहामृग के लक्षणों पर पूरा खरा उतरता है।

1. मिश्रमीहामृगे वृत्तं चतुरंकं त्रिसन्धिवत् ।

नरदिव्यावनियमान्नायक प्रतिनायकौ ।।

ख्यातौ धीरोदतावन्त्यो विपर्ययाद युक्तं कृतम् ।

दिव्यास्त्रियमनिच्छन्तोमयहारादिनेच्छतः ।।

शृंगाराभासमप्यस्य किञ्चित् किञ्चित् प्रदर्शितम् ।

संरम्भं परमानोय युद्धं व्याजान्निवारयेत् ।।

वधं प्राप्तस्य कुर्वीत वधं नैव महात्मनः ।

दश10 : 3/72-75

2. नाट्यशास्त्र X 20/82

3. भाव प्रकाशन : पृ० 253 : पंक्ति 8 से 22 तक

4. नाट्य दर्पण : पृ० 131

5. साहित्य दर्पण : 6/245

समवकार :

समवकार शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है, 'समवकीर्यन्तेऽस्मिन्नर्था इति समवकारः' । अर्थात् जिसमें सब नायकों के प्रयोजन की स्थिति हो उसे समवकार कहते हैं। धनन्जय के अनुसार—'समवकार में नाटक की भाँति आमुख होना चाहिए। इसकी कथा देवताओं एवं दैत्यों से सम्बन्धित होती है। इसमें विमर्श एवं कैशिकी वृत्ति से भिन्न वृत्तियाँ पाई जाती हैं। नायक इतिहास प्रसिद्ध व संख्या में बारह देवता एवं दानव होते हैं। इन सबका भिन्नाभिन्न फल होता है। सभी नायक वीर रस प्रधान होते हैं। इसमें तीन बार कपट, तीन प्रकार का धर्म, अर्थ व काम या शृंगार और तीन बार पात्रों में भगदड़ व विद्रव का संयोजन होता है। प्रथम अंक में मुख व प्रतिमुख दो सन्धियाँ तथा 24 घड़ो §12 नलिका§ की कथावस्तु होनी चाहिए। शेष दो अंकों में क्रमशः 4 व 2 नलिका की कथा वस्तु होनी चाहिए। इसमें जो तीन कपटों की योजना होती है वे वस्तु स्वभाव तथा शत्रुओं के द्वारा विहित होते हैं। नगरोपरोध, युद्ध, बात, अग्नि आदि उत्पातों के कारण पलायन होता है। समवकार में धर्म अर्थ व काम नामक शृंगार पाया जाता है। बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति एवं प्रवेक्षक नामक अर्थोपदेक्षक का अभाव होता है। इसमें प्रहसन की भाँति बोध्यंगों की योजना होनी चाहिए।²

1. दशरूपक : 3/62-67 पर अवलोक टोका

2. कार्य समवकारेऽपि आमुखं नाटकादिवत् ।

व्यातं देवासुरं वस्तु निर्दिमर्शास्तु संध्यः ॥

वृत्तयो मन्द कैशिक्यो नेतारो देव दानवाः ।

दादशीदात्त विख्याताः फलं तेषां पृथक् पृथक् ॥

बहुवीररसाः सर्वोयददम्भो धिमन्थने ।

अकैस्त्रिभिस्त्रिकपटस्त्रिशृंगारस्त्रिविद्रवः ॥

द्विसंधिरंकः प्रथमः कार्यो दादशनास्तिकः ।

चतुर्दिनालिकावन्त्यो नालिका घटिकादयम् ।

वस्तु स्वभावदेवारिकृताः शत्रुः कपटास्त्रयः ।

नगरोपरोधयुद्धे वातामन्यादिक विद्रवाः ।

धर्मार्थकामैः शृंगारो नात्र बिन्दु प्रवेक्षकौ ।

बोध्यज्ञानि यथालाभं प्रहसने यथा ॥

दश10 3/62-68

शारदातनय ने बारह नायकों का अलग-अलग प्रयोजन स्वीकार किया है।¹ आचार्य भरत ने समवकार में गायत्री उष्णिक् आदि अनेक छन्दों की आवश्यकता बताई है।² सभी आचार्यों का संख्या के सम्बन्ध में स्वतन्त्र मत होते हुए भी विश्वनाथ ने नायकों की जाति के सम्बन्ध में स्वतन्त्र मत व्यक्त किया है।³ धनन्जय⁴ शारदातनय⁵ और रामचन्द्र⁶ के मत में समवकार के नायक धीरोदात्त चरित्रवाले देव एवं दानव होने चाहिए। नाट्यशास्त्र में तीन प्रकार के धर्म, अर्थ तथा काम शृंगारों में से एक अंक में एक प्रकार का शृंगार तथा प्रथम अंक में काम शृंगार की अनिवार्यता मानी गई है।⁷

रामचन्द्र गुणचन्द्र ने घोर के साथ रौद्र रस का भी उल्लेख किया है। उसने देव दैत्यों की उद्धता के कारण छाया मात्र की सम्भावना मानी है।⁸ शारदातनय⁹ एवं विश्वनाथ¹⁰ ने प्रथम अंक में दो, द्वितीय में तीन, तृतीय में विमर्श को छोड़कर शेष सभी सन्धियों के निर्वाह का निर्देश दिया है।

वत्सराज का यह समवकार शास्त्रीय कसौटी पर पूरा खरा उतरता है। इसको कथावस्तु देव एवं दैत्यों से सम्बद्ध और इतिहास प्रसिद्ध है। विमर्श सन्धि तथा कैशिकी वृत्ति के अतिरिक्त सभी सन्धियों और वृत्तियों का शास्त्रानुसार

1. भाव प्रकाशन : पृ० 248
2. नाट्यशास्त्र : 20
3. साहित्य दर्पण : 6/235
4. दश० / 3/63-67
5. भाव प्रकाशन : पृ० 248
6. नाट्य दर्पण : पृ० 124
7. नाट्यशास्त्र : पृ० 70-7
8. नाट्य दर्पण : पृ० 124
9. शारदातनय : भाव प्रकाशन : पृ० 248-250
10. साहित्य दर्पण : 6/234-239

इसमें संयोजन है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, मेरु, मन्दरादि, कुबेर, वरुण, वायु, कोणपनाथ, यम, वासुकि एवं अग्नि ये बारह प्रसिद्ध देव दानादि नेता-पात्र हैं। सभी को फल प्राप्ति भिन्न भिन्न है। तीन अंकों वाले इस रूपक में वस्तु कृत स्वभाव कृत तथा शत्रुकृत-तीन कपटों की योजना है। नगरों परोध, युद्ध, बवंडर, अग्नि आदि के उत्पातों के कारण देव दानवों के पलायन का भी वर्णन है। कवि ने विभिन्न बोध्यंगों की योजना की है।

आलोच्य रूपकों की लोक मूलकता :

सामान्यतया 'लोक वृत्तानुकरणं नाट्यम्' के रूप में, सभी नाट्य विधाएँ लोक वृत्तानुकरणापरक होने के कारण लोक मूलक हैं, फिर भी भरत ने अभिनय भाषा और नाट्य मण्डप को नाट्य-धर्मी प्रवृत्तियों का सूचक मानकर लोकधर्मी नाट्य को एक पृथक् नाट्य के रूप में मान्यता प्रदान की है। नाटक का मूल तत्त्व अनुकरण है, जो प्रायः प्रसन्नता के क्षणों में स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत हो जाता है। नाटक के विकास की आदिम अवस्था का अनुशीलन करने से यह तथ्य सहज रूप से सामने उभर कर आता है कि प्रतिपन्थी के ऊपर विजय प्राप्त करना मानव जीवन की एक बड़ी घटना समझी जाती थी। विजय प्राप्ति के अनन्तर खुशी में लोग कदाचित् उसी घटना का अनुकरण कर अपनी प्रसन्नता अभिव्यक्त करते थे। भरत मुनि के उल्लेख से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है। इन्द्रध्वज मह के अवसर पर खेला गया सबसे पहला नाटक असुरों पर देवताओं की विजय की घटना से सम्बन्धित था। दूसरा अमृत मन्थन समवकार था, और तीसरा शिव के समक्ष खेला गया त्रिपुरदाह डिम था।¹ इन रूपकों में विजय गाथा की घटना ही प्रमुख है। वस्तुतः अनुकरण मानव की स्वाभाविक प्रकृति है, वह अनुकरण से ही सोखता है और अनुकरण में ही आनन्द प्राप्त करता है। प्रत्येक घरों में छोटे-छोटे बच्चे बड़ों के क्रिया कलापों का अनुकरण आनन्द करते हुए मिल जायेंगे।

जहाँ तक वत्सराज के रूपकों की लोक मूलकता का प्रश्न है, उसके बारे में हमें सर्वप्रथम इन रूपकों की लोक धर्मिता की ध्यान में रखना होगा, जिसका विवेचन

अध्याय दो में हम प्रस्तुत कर चुके हैं उसको पुनरावृत्ति अनुचित होगी। इसलिए हम उस विषय को यहाँ पुनः प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं। लेकिन जहाँ इन स्थितियों की विधाओं को लोक मूलकता का प्रश्न है, यह निस्तन्देह कहा जा सकता है कि डिम व्यायोग, समवकार जैसी उद्भूत नाट्य विधायें विशुद्ध रूप से लोक मूलक हैं। इसको पुष्टि में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं:

§1§ डिम समवकार और व्यायोग नाट्य की उद्भूत विधायें हैं, जिनमें 'शिष्टजनानुमोदित' संयत व्यवहार की उपेक्षा रहती है।

§2§ नाट्य शास्त्र के इतिहास में ये प्राचीनतम नाट्य विधायें हैं जो उसके अधिकतम स्वरूप की ओर इंगित करती हैं।

§3§ इन नाट्य विधाओं में युद्ध और प्रतिपन्थी पर विजय ही एक मात्र घटना होती है जो अपने अस्तित्व की रक्षा के प्रसंग में मानव द्वारा अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने की घटना की ओर संकेत करती है।

§4§ मारकाट, युद्ध, मंगदड़ जैसे दृश्योंवाली नाट्य विधाओं में जन सामान्य को सबसे अधिक आनन्द आता है। इससे स्पष्ट है कि ऐसे नाट्य विधायें जन-सामान्य में अधिक प्रिय रही होंगी।

§5§ ऐसे नाटकों के मंचन के लिए वस्तुतः नाट्य-मण्डपों की आवश्यकता नहीं थी। ये स्थल आकाश के नीचे खुले मंच पर खेले जाते थे। इन्द्रध्वज के अवसर पर खेला गया पहला नाटक भी खुले मंच पर खेला गया था।

§6§ इन नाट्य विधाओं में नृत्य एवं संगीत के लिए कोई स्थान नहीं था।

§7§ कथावस्तु के चयन में लौकिक वृत्तों की प्रधानता दी जाती थी, किन्तु आगे चलकर अलौकिक पात्रों को भी इसमें समायोजित कर लिया गया।

उपर्युक्त विशेषताओं के आलोक में जब हम वत्सराज के किरातार्जुनीयम्, व्यायोग त्रिपुरदाह डिम, और समुद्र मंथन समवकार का अनुशीलन करते हैं तो दो बातें हमारे सम्मुख प्रमुख रूप से उभर कर आती हैं :

§1§ वत्सराज ने डिम और समवकार के लिए वही कथावस्तु और नाम चुना जो नाट्यशास्त्र के चतुर्थ अध्याय के प्रारम्भ में उल्लिखित हैं। वस्तुतः जैसा कि पूर्व

बताया जा चुका है कि भरत के अनुसार समुद्र मन्थन समवकार और त्रिपुरदाहडिम नव-निर्मित प्रेक्षागृह में खेले जानेवाले सबसे पहले रूपक थे। कदाचित् इन लोकपरक और विष्णु नाट्यधर्मी नाट्यरूपों को प्रेक्षागृह में नाट्यशास्त्रीय नियमों के अनुसार खेलने का प्रचलन हुआ और उसका स्वरूप लोकधर्मी से नाट्यधर्मी बनाने का प्रयास किया गया। जहाँ तक किरातार्जुनीयम् व्यायोग का प्रश्न है वह भी मुख्य परक होने के कारण अपनी कथानक रुढ़ियों के आधार पर विष्णु लोकधर्मी है, जिसे शास्त्रीय स्वरूप देने का प्रयास किया गया है।

॥2॥ पौराणिक आख्यान जन मानस में समाये हुए थे। अतः उनकी लोकप्रियता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। अति प्राकृत तत्त्वों का समावेश होने के कारण इन रूपक विधाओं में जन सामान्य की रुचि विस्मय और श्रद्धा के कारण अधिक थी। इस प्रकार इन रूपक विधाओं को लोक मूलकता स्वतः स्पष्ट है।

प्रेमाख्यान लोक परम्परा में लोकप्रियता की दृष्टि से दूसरे स्थान पर हैं। प्रेमाख्यानों को लेकर आज भी विभिन्न प्रकार के लोक नाट्य समाज के विभिन्न वर्गों में बहुत लोकप्रिय हैं। कालिदास के 'विक्रमोर्वशीयम्' से ज्ञात होता है कि भरत मुनि ने देव सभा में लक्ष्मी स्वयंवर नामक नाटक का अभिनय प्रस्तुत किया था। कबोलों में और उसके बाद मध्यकालीन संस्कृति में सरदार अथवा राजाओं के द्वारा दूसरे राजा की कन्या अथवा किसी मनचाही कन्या के अपहरण की बातें सामान्य थीं। इन राजाओं अथवा सरदारों के, चारणा-भाट, उनके इस वीरतापूर्ण कृत्यों का वर्णन अपनी गाथाओं में किया करते थे। कालान्तर में इस प्रकार की गाथाएँ लोक गाथाओं के रूप में प्रसिद्ध हो जाती थीं, और फिर उन्हीं के आधार पर लोक नाट्य लिखे जाते थे। रुक्मिणीहरण ईहामृग की कथावस्तु भी कुछ ऐसी ही है।

यद्यपि ईहामृग, व्यायोग, डिम और समवकार के लोक प्रचलित रूप क्या थे ? इसका सही-सही ज्ञान आज हमें नहीं ज्ञात है, क्योंकि एक तो लोक नाट्य की देश, काल, भेद से अनेक परम्पराएँ हैं, दूसरे संस्कृति के विकसित होते हुए आयामों ने

लोक नाट्य परम्पराओं को उच्छिन्न कर दिया किन्तु स्वांग, नौटंकी, यात्रा, लोला, सांगीत आदि ऐसी कुछ लोक नाट्य परम्पराएँ हैं, जिनमें संस्कृत की उपर्युक्त विधाओं के बीज दूँट जा सकते हैं।

संस्कृत का भाण-प्रहसन साहित्य तो विपुल रूप से लोक मूलक है। संस्कृत भाण शब्द को भले ही वैयाकरण अथवा काव्यशास्त्री 'भण' या 'भाणि' से सिद्ध करें, अपने विपुल रूप में लोक भाषा का देशी शब्द है और आज भी उसी रूप और उसी अर्थ में लोक प्रचलित भी है। कहीं-कहीं विशेष रूप से बनारसी बोलचाल में भाण को भड्डा भी कहा जाता है। केयालयों में निरन्तर उपस्थित रहनेवाले ये भड्डे, केयाओं को अपने विविध कारनामों से, का में करने की निज करतूतों का बखान बड़े ही बेझिँ पूर्ण ढंग से ग्राहकों के सम्मुख करते हुए आज भी मिल जायेंगे। इन्होंने भाड़ों का एक वर्ग आज भाट के रूप में मिलता है जो चारणों या रायभाटों से पृथक् है। समाज में दोनों की स्वतन्त्र सत्ता है, चारणों {भाटों} का काम जहाँ केवल किसी व्यक्ति और उसके पूर्वजों की प्रशंसा कर धन उपार्जन करना है वहीं इन भाट भड्डों का काम विभिन्न वैवाहित अवसरों पर अपने हास्यपूर्ण क्रिया-कलापों द्वारा लोगों का मनोरंजन करना है। कहीं-कहीं इन्हें बहुरूपिया भी कहा जाता है। वस्तुतः उन्हीं के क्रिया-कलापों की लोक प्रियता से आकृष्ट होकर संस्कृत के कवियों ने भाण को भी रूपकों में स्थान दिया होगा।

प्रहसनों का प्रारम्भिक उद्देश्य तो केवल किसी व्यक्ति को नकल उतारकर उसको हँसी उड़ाना है, किन्तु काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह उद्देश्य व्यंग्यपरक बन जाता है। बहुरूपिये आज भी किसी बारात आदि के अवसर पर दूल्हा और उसके पिता की रईसी पर या उसके खानदान की पवित्रता पर छोटे कसते हैं जो वास्तव में केवल मनोरंजन के लिए होता है। वस्तुस्थिति से उनका कुछ लेना देना नहीं रहता। होली आदि के अवसरों पर नट खट बच्चों द्वारा किसी चिढ़नेवाले अविवाहित वृद्ध के विवाह रचाने का ढोंग या किसी ग्राम्य पण्डित को खिल्ली उड़ाने के लिए न्योता देने का परिहास, विवाह के अवसर पर बारात चले जाने के बाद घर पथ की स्त्री द्वारा खेला जानेवाला 'खोइया' ये सभी लोक प्रचलित

प्रहसनों के विविध रूप हैं जिनका प्रधान उद्देश्य हँसना, हँसाना होता है। संस्कृत के प्रहसनों पर दृष्टिपात करने पर यह तथ्य भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि इन प्रहसनों की कथावस्तु भी वास्तविक कथ, कवि कल्पित ज्यादा होती है। वैसी हास्यास्पद घटनाओं के उल्लेख इन प्रहसनों में मिलते हैं वास्तविक जीवन में वैसी हास्यास्पद घटनाएँ शायद हो कभी घटित होती हैं। हास्य का अतिरेक होने के कारण इनकी कथावस्तु की कृत्रिमता स्वतः झलकने लगती है। यह विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि संस्कृत प्रहसनों में हास्य उत्पन्न करनेवाला प्रमुख वात्र विदूषक एकदम अनुपस्थित है, जबकि स्पष्ट की अन्य विधाओं में हास्य प्रस्तुति उसी के माध्यम से की जाती है। नौकिक प्रहसनों में विदूषक आवश्यक रूप से उपस्थित रहता है।

इस प्रकार वत्सराज के रूपकों की लोक मूलकता सुस्पष्ट है, फिर भी भाषा और प्रहसन की छोड़कर हम उसके अन्य रूपक विधाओं के मूल लोक स्वरूप का अन्वेषण करने में असमर्थ हैं।

अध्याय-4

वत्सराज के रूपकों में प्रतिबिम्बित लोक धर्म का स्वरूप

यह पृथिवी नाना धर्मोंवाले अनेक जनों को धारण करती है।¹ इस जन का वैविध्य ही भारतीय जीवन का अभिभावक सत्य है। भाषाओं के भेद, जातीय जीवन की सामूहिक विविधता को और बढ़ा देते हैं। आर्यों के आगमन के पूर्व यहाँ आर्येतर संस्कृति और धर्म विद्यमान था। उनके द्वारा स्थापित किया गया धर्म, भले ही सप्त 'सैन्य प्रदेस' या 'इण्डो-यूरोपियनों' का धर्म रहा हो, किन्तु वह वैदिक धर्म लोक धर्म ही था, किन्तु बाद में संहिताओं, ब्राह्मणों और आरण्यकों में वह शास्त्रीयता से परिपूरित हो, जन सामान्य से पृथक् हो, विष्ट वर्ग का प्रतिनिधित्व करने लगा, और पुरोहितों के हाथों पकड़कर जटिल कर्मकाण्डों में उलझ कर रह गया।

इसके विपरीत जन-सामान्य में धार्मिक विश्वास की जड़ें बहुत गहरी थीं। उनके देवो-देवता भी असीम शक्ति सम्पन्न एवं सर्वव्यापक थे। इनमें कोई देवता तो बहुत शक्तिशाली थे, तो कोई-कोई शक्तिशाली देवता के अनुचर के रूप में पूजित थे। भक्त के लिए उनका महत्त्व मुख्य देवताओं से कम न था। भक्त के लिए उनका महत्त्व मुख्य देवताओं से कम न था। लोक में ये देवो-देवता आज भी पूजित हैं, तथा उनका महत्त्व अक्षुण्ण बना हुआ है।

शास्त्रीय ग्रन्थों ने न केवल शास्त्रीय धर्म को अपितु लोक धर्म को भी परिभाषित करने का प्रयत्न किया है—

“कल्पितः श्रुति मूलो वा मूले लोकेर्धृतः सदा ।

देशादि धर्मः स ज्ञेयो देशे-देशे कुले कुले ॥” मनु०

अर्थात् हर एक देश एवं कुल में जो लोगों द्वारा कल्पित वेद मूलक या वेद मूल से रहित & अर्थात् किसी अन्य स्रोत से प्राप्त & आचार सदा धारणा किया जाता है, वे देशादि धर्म हैं।

उपर्युक्त पद में आदि पद से तात्पर्य, जाति, कुल, समय आदि ऐसे मूल तत्त्वों से है, जो धर्म के परिवर्तन-परिवर्धन में मूल कारण हैं। इस प्रकार देश धर्म, जाति धर्म,

1. अथर्ववेद : 12/1/45

2. कोथ : वैदिक धर्म एवं दर्शन : अनु० सूर्यकान्त : पृ० 68

कुल-धर्म समय धर्म आदि लोक धर्म के अनेक भेद सम्भव हैं।

लोक धर्म का आधार परम्पराएँ हैं। उसका पालन उसी तरह किया जाता है, जिस रूप में वह अनादि-काल से चला आ रहा है तथा पूर्वज उसे मानते रहे हैं।¹

धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ वेदों को सभी धर्मों का आधार स्वीकार करते रहे हैं।¹ वैदिक धर्म एवं संस्कृति तो विष्णु लोक धर्म एवं लोक संस्कृति मानी जाती रही है। वैदिक जन कृषि लोकानुरागी थे और यह विषय उन्हें सर्वाधिक प्रिय था।³ लेकिन ज्यों-ज्यों शास्त्रीय चेतना बढ़ती गयी, त्यों-त्यों वेद और लोक का भेद बढ़ता गया।

मरुहिरि ने धर्म का मूल आगम ही माना है। उनके अनुसार ज्ञान भी आगम पूर्वक है :

न चागमाहते धर्म तर्केण व्यवतिष्ठते।

अखीणामपि यज्ज्ञानं तदप्यागमपूर्वकम्॥⁴

अतएव लोक धर्म ही प्राचीन है। उसका प्रवाह अनेक अवान्तर प्रवाहों में विभक्त होकर निरन्तर अग्रसर है। उसे लोक सम्मत होने के कारण किसी तर्क या शास्त्र से नियन्त्रित नहीं किया जा सकता है।⁵ वह किसी धर्म का विरोधी नहीं, अपितु समन्वयवादी होता है।

यद यदाचरति श्रेष्ठ लोकस्तदनुवर्तते।

त यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥ गीता 3/21

लोक परम्पराएँ तो शिष्टजनों के आचरण और उपदेशों पर आश्रित होती हैं, किन्तु वे शिष्टजन शास्त्रीय चैतन्य से रहित विष्णु लोक जीवन के निवासी

1. शृङ्गनोति : 4/50-51

2. मनु : 2/6

3. अथर्व0 : 5:30:17

4. वाक्य पदीय : 1/30

5. पूर्वोद्धृत ग्रंथ : 1/31

होते हैं। जब ऐसे लौकिक शिष्टाचार शास्त्रीय धैर्य से जापूरित होते हैं, तो लोक से दूर हो जाते हैं, और वे उन लौकिक परम्पराओं को विच्छिन्न करने में तत्पर अग्रसर रहते हैं, जिनका अनुपालन लोक में अनन्त काल से चला आ रहा है। अतः लोक सम्मत शिष्टाचार ही लोक का प्रमाण बन पाता है।

शास्त्र और लोक दोनों ही लोकधर्म के उपादान हैं। जप, तप, यज्ञ, दान, देवाराधन तथा आत्मसुष्टि आदि लोक धर्म के उपादान हैं।

यद्यपि लोक विस्तृत हैं वह अनेक प्रकार से फैला हुआ है, उसे जानना कठिन है।¹ यह अनेक विषय प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त है। अथर्ववेद के अनुसार इस पृथिवी पर बहुभाषी लोग हैं, जो अपने क्षेत्र के अनुसार विभिन्न धार्मिक कार्यों का सम्पादन करते हैं।² महाभारत भी धर्म को व्यापकता^{पर} पर्याप्त प्रकाश डालता है तथा उसका वैविध्यपूर्ण वर्णन करता है।³

कर्तव्य के अर्थ में मेघातिथि,⁴ गोविन्दराव⁵ और हरिदत्त⁶ ने धर्म के पाँच भेद वर्ण-धर्म, आश्रम-धर्म, वर्णाश्रम-धर्म, नैमित्तिक धर्म और कुल धर्म माने हैं।

लोकधार या लोक विधियों के अर्थ में धर्म का स्वल्प अत्यन्त विस्तृत है, किन्तु अधि मुनियों ने उन्हें वर्गीकृत करने का प्रयत्न किया है। वशिष्ठ ने देश धर्म, जाति-धर्म, कुल-धर्म, तीर्थ-धर्म और समय धर्म, भेद माने हैं।⁷

गुण ने जाति, देश, त्रेणि एवं कुल ये चार धर्म लोक धर्म माने हैं।⁸ भारतीय

1. वैश्वामित्र ब्राह्मण : 3:28

2. अथर्ववेद : 5:30:17

3. महाभारत शान्ति : 280-26

4. मनु : 2/25 मेघातिथि तथा गोविन्दराव

5. पूर्वोक्त

6. नौतमधर्म सूत्र : 19.1 पर हर दत्त

7. यथादेश जाति धर्म कुल तीर्थ समयपराम्परायो प्रमाणम्-वादता इति : पृष्ठ 158

पर वशिष्ठ नाम से उद्धृत।

8. गुणोक्ति : 4/45-46

परम्परा में तैंतोस को टि देवता माने गये हैं। यदि प्रत्येक देवता के लिए एक-एक देवी को कल्पना की जाय तो यह संख्या दूनी हो जायेगी। इनकी उपासना पद्धतियाँ भी भिन्न-भिन्न होंगी।

लोक देवता और लोक देवियाँ :

लोक मानस में देवता की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों ने अतिशय विचार किया। कोथ ने इस सन्दर्भ में मानवाकृति देववाद, पशु देववाद, चेतनवाद, भाव देववाद, प्रतीकवाद, प्रेतात्मावाद आदि सिद्धान्तों का उल्लेख कर उस पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया।¹ किन्तु ये सभी सिद्धान्तपूर्ण नहीं अपितु एकांगी है। भारतीय देवों का संसार अतिव्यापक है। संसार के प्रत्येक पदार्थ में उसके अधिष्ठातृ देवता के रूप में कोई न कोई देवता अवश्य विद्यमान है। यदि कोथ द्वारा उल्लिखित सभी मतवादों में समन्वय भी कर दिया जाय, तो भी भारतीय देवों की उत्पत्ति और उनके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं हो पाता।

देवता वास्तव में लोक मानस में जन्म लेते हैं। उसी से उनका सम्बन्ध रहता है और उसी के संकल्पितार्थ की सिद्धि करते हैं यजुर्वेद इस तथ्य का प्रतिपादन करता है 'ये देवा मनो जाता मनोयुजा ते नः पान्तु तेभ्य स्वाहा।' उनका प्रकटीकरण लोक मानस के संकल्पितार्थ अथवा इच्छितार्थ की सिद्धि के लिए होता है। भले हो इस प्रक्रिया में लोक मानस में भय श्रद्धा या रहस्य जिज्ञासा का हो क्यों न हाथ हो।

देव शब्द की व्युत्पत्ति कोडा, विलिगोषा, व्यवहारवृत्ति, स्तुति, मोद, मद स्वप्न कान्ति और गति— इन अर्थों में प्रयुक्त होनेवाली दिव् धातु से हुई। यास्क ने दान, धोतन, दीपन गुणों से युक्त होने या पु स्थान में रहने के आधार पर देव शब्द की निष्पत्ति स्वीकार की।² ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि सबसे पहले मेघ का जन्म हुआ।³

1. कोथ—रिलीजन एण्ड फिलासफी आफ दि वेद एण्ड उपनिषद् का हिन्दी

अनुवाद : अनु सूर्यकान्त : प्रथम भाग पृ० 72-93

2. देवा दानाद दीपनाद वा धोतनाद वायु-स्थाने भवतीति वा। यास्क नि०: 7/1

3. ऋ० : 10:72:23 पर यास्क की व्याख्या §2.7§

ऋग्वेद के उक्त सूक्त से स्पष्ट है कि सबसे पहले मनुष्य से बरसता हुआ जल देखा होगा और उसके प्रति ब्रह्मा एवं कृतज्ञता उत्पन्न हुई। अतः मानव ने प्रकृति में देवता के दर्शन कर तादात्म्य स्थापित कर मानवीय गुणों का आरोपकरके उनकी स्तुति वन्दना करना शुरू कर दिया। पुराणों साहित्य के अध्ययन से हमें लोक देवताओं की विशाल संख्या का पता चलता है जिनका 33 कोटि देवताओं के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। मारकण्डेय पुराण और मत्स्य पुराणों में मातृ देवियों की, एवं गरुड पुराण में अनेक मुटभैरवे देवों की विस्तृत सूचियाँ उपलब्ध है।

आलोच्य रूपकों में लोक-धर्म :

वत्सराज के रूपकों में लोक धर्म के विभिन्न रूप वृणाश्रम धर्म, देश धर्म, कुल-धर्म, समय धर्म आदि रूप तो प्रत्यक्षतः अनुपलब्ध है, किन्तु वृणाश्रम सम्बन्धी धर्मों के साथ-साथ विभिन्न देवी देवता के पूजा के अवसर उल्लेख मिलते हैं। इन देवताओं को स्थूल रूप में दो वर्गों में बाँटा जा सकता है- वैदिक देवता एवं लोक देवता।

वैदिक देवता :

यद्यपि इन्द्र, वरुण, शिव, ब्रह्मा, कृष्ण चन्द्रादि मूल रूप से विद्वद् वैदिक देवता हैं, किन्तु आलोच्य रूपकों में इनकी जो चारित्रिक विशेषताएँ आई हैं वे पौराणिक एवं लौकिक अधिक हैं। वत्सराज के रूपकों में कृष्ण, बलराम, इन्द्र, यम, अग्नि, वायु, कार्तिकेय, ब्रह्मा, वृहस्पति, कुबेर आदि देवों की चर्चा है, किन्तु पूजा के स्तर पर कहीं भी उनका उल्लेख नहीं हुआ है।

लोक देवता :

लोक देवताओं के भी दो वर्ग हैं :

§1§ स्वर्गीय मुट भैरवे देवता : इसके अन्तर्गत अप्सरा, गन्धर्व सिद्ध आदि हैं।

किरातार्जुनीयम् में इस वर्ग के अन्तर्गत तिलोत्तमा, घृताची, रम्भा, उर्वशी आदि का मात्र नामोल्लेख है।¹

§2§ धरती तल के देवता :

इसके अन्तर्गत यक्ष, नाग आदि आते हैं। वत्सराज के रूपकों में इसके अन्तर्गत

मणिमद्र को पूजा का उल्लेख मिलता है।¹

§3§ अचेतन प्रकृति के देवता :

सूर्य, चन्द्र, वृक्ष, नदी, समुद्र, पर्वत आदि इसके अन्तर्गत आते हैं। त्रिपुरदाह डिम में हिमालय आदि का नामोल्लेख इसके अन्तर्गत मिलता है।

देवियाँ :

वत्सराज के रूपकों में हमें लोक जीवन में देवी पूजा का उल्लेख मिलता है। उसमें गौरी रुद्राणी² तथा इन्द्राणी³ का उल्लेख मिलता है जो तत्कालीन लोक-जीवन में पूजी जाती थीं।

रुद्राणी/पार्वती/गौरी देवी :

वेदों एवं पुराणों में देवी पूजन के अनेक उल्लेख मिलते हैं। इसमें देवी पूजन को दो स्थितियाँ रही हैं। एक मातृ देवी के रूप में, दूसरी शक्ति के रूप में, एक का रूप उग्र है तो दूसरे का सौम्य।

सर्वप्रथम बाज सनेयो संहिता⁴ में अम्बिका का उल्लेख प्राप्त है, वहाँ ये रुद्र को बहन कहा गया है। तैत्तरीय संहिता⁵ तथा शतपथ⁶ ब्राह्मण में भी अम्बिका का उल्लेख है। तैत्तरीय आरण्यक में रुद्र को अम्बिका पति⁷ कहा गया है। इसी आरण्यक में उमा का उल्लेख मिलता है। यहाँ रुद्र को उमापति कहा गया है।⁸ केन उपनिषद्⁹ में इन्द्र तथा अन्य देवों के साथ ब्रह्म ज्ञानदात्री देवी के रूप में

1. कर्पूरचरित भाग : श्लोक 23 : पृ० 31

2. समुद्र मन्थन० : श्लोक 12 : पृ० 157

3. रुक्मिणी० : पृ० 65

4. बाजसनेयो संहिता : 3, 53

5. तैत्त० सं० 1.8.6.4

6. शतपथ ब्राह्मण : 2.6.3.4

7. तैत्त० आ० 10.18

8. तैत्त० आ० : 10: 18

9. केन० उपनिषद् : 3:25

उमा हेमवती का उल्लेख है। परवर्ती वैदिक ग्रन्थों में उमा हेमवती तथा अम्बिका दोनों को रुद्रपत्नी कहा गया है।।

महाकाव्य काल में पार्वती शिवपत्नी के रूप में हमें मिलती हैं। वे उमा तथा गिरिजा नाम से लोकप्रिय हुईं। रामायण ¹ में पार्वती तथा रुद्राणी नामों से उनका उल्लेख हुआ है। अपने सौम्य रूप से देवी शिव पत्नी तथा भक्तों का कल्याण करनेवाली हैं। ² महाभारत के दो स्तोत्रों में शक्ति महिमा का आख्यान मिलता है। इस ग्रन्थ में दुर्गा को उमा का रूप कहा गया है। ³ हरिवंश पुराण में देवी को उमा के रूप में शिव की पत्नी माना गया है। ⁴

पुराणी में पार्वती को प्रसिद्धा में और वृद्धि हुई। विभिन्न पुराणों में इसके सन्दर्भ में विस्तृत आख्यान मिलते हैं। मत्स्य पुराण ⁵ के अनुसार पिता को मानस कन्या मैना का विवाह हिमालय से हुआ था, जिससे उन्हें तीन पुत्रियाँ उमा सकपर्णा तथा अपर्णा पैदा हुईं। हिमालय कन्या उमा का विवाह शिव के साथ हुआ। मत्स्य पुराण में शिव ने उन्हें काली कहकर सम्बोधित किया। ⁶ मार्कण्डेय पुराण ⁷ के अनुसार शुम्भ और निशुम्भ से पराजित देवता हिमालय पर देवी को शरणा में आये, जहाँ पार्वती स्नान कर रही थी, पार्वती की क्रुधि से गौरवर्ण की देवी हुई जो कैशिकी कहलायीं। इस कैशिकी की उत्पत्ति के बाद पार्वती का रंग काला पड़ गया। अनन्तर पार्वती ने तप कर ब्रह्मा को प्रसन्न कर स्वर्णिम कान्ति को प्राप्त किया। वायुपुराण ⁸ के अनुसार उमा, मेनका की

1. रामायण : 7:13:23, 7:4:17, 7-6-26-30

2. वही, 7:89:22-23

3. महाभारत : 6:23:1-18 भूर का अनु० खंड 4 : पृ० 433-33

4. खल्लिन, २० हायमन्स टू द गाडैस, मद्रास : पृ० 70-71

5. मत्स्य पुराण अध्याय : 13

6. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : 13:22

7. दुर्गा सप्तशती : 5:37+ 41

8. वायु पुराण : 70:10-12

पुत्रो थीं। कठोर तप के कारण माँ ने उन्हें उमा कहा था। देवताओं ने ब्राह्मण धर्म के संचालन के लिए रुद्राणी के रूप में अवतरित होकर योग शक्ति द्वारा विश्व के संचालन के लिए उनसे प्रार्थना की थी।¹ यहाँ देवो के दो रूप हैं गौर {गौरो} और कृष्ण {काली}।

वत्सराज के पूर्ववर्ती कवि जयदेव के 'प्रसन्न राघव' नाटक में चण्डिका की स्तुति की गयी है।² वत्सराज के रूपकों से प्रतीत होता है कि उत्तम वर की प्राप्ति के लिए रुद्राणी की पूजा की जाती थी।³ इस निमित्त कन्या लक्ष्मी पार्वती की पूजा करती है।⁴ इसी प्रकार रुक्मिणीहरण ईहामृग में गौरोमन्त्र की सिद्धि से प्रसन्न गौरो रुक्मिणी को सफल होने की सूचना देती है।⁵ आज भी लोक में इस सम्बन्ध में देवी गीतों में गौरो पूजा का उल्लेख मिलता है तथा कुमारियाँ उत्तम वर प्राप्ति के लिए गौरो का व्रत करती हैं। विवाह के समय गोबर की गौरो बनाकर वर पक्ष के द्वारा लाये गये गहने, साड़ी, चूड़ियों तथा तागपाट से गौरो की पूजा की जाती है, जिसकी पुष्टि भुवनेश्वर के स्वर्ण जालेश्वर के उत्तर जंघमूर्ति से होती है।

इन्द्राणी :

इन्द्र पत्नी इन्द्राणी का उल्लेख वैदिक साहित्य से हो मिलने लगता है। ऋग्वेद में स्पष्टतः इन्द्र की पत्नी का नाम इन्द्राणी बताया गया है।⁶ ऋग्वेद में ही इन्द्र पत्नी 'शंघो' का भी नाम आता है।⁷ वस्तुतः ऋग्वेद के अनुशीलन

1. दुर्गा सप्तशती : 23:9-10
2. प्रसन्न राघव : दि० अंक : श्लोक 6
3. समुद्र० : पृ० 155
4. समुद्र० : पृ० 159 : श्लोक 15
5. रुक्मिणी हरण : पृ० 74
6. अ० : 1:22:12
7. अ० : 1:17:4 , 1:62/12 आदि

ते इन्द्र को अनेक पत्नी होने का प्रमाण मिलता है।¹ जिन्हें सामान्य रूप से इन्द्राणी ही कहा जाता था, किन्तु श्रुति उन सभी इन्द्राणियों में प्रधान इन्द्राणी थी। ऋग्वेद मं 10 सूक्त 159 के अध्ययन से पाण्डुरंग वामनकाणे ने निष्कर्ष निकाला है कि श्रुति ने अपनी बहुत सी स्त्रियों को हरा दिया था, या मार डाला था तथा इन्द्र पर रक्षाधिकार प्राप्त कर लिया था।² ऋग्वेद में ही एक स्थान पर कहा गया है कि सभी स्त्रियों में इन्द्राणी ही तौभाग्यवती हैं, क्योंकि उनके पति न तो कभी कुशावस्था को प्राप्त होंगे, न करेंगे।³

इन्द्राणी की तपस्त्रियों पर विजय, पति पर रक्षाधिकार और पति को शाश्वत युवावस्था तथा अमरता देती घटनाएँ हैं, जिनके प्रति प्रत्येक स्त्री को सात्वता निरन्तर कमी रहती है, यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। कदाचित् इन्हीं तौभाग्यों के कारण तौभाग्यवती स्त्रियों के बीच इन्द्राणी की प्रतिष्ठा हुई और वह उनकी आराध्या कमी। आगे चलकर पौराणिक युग में इन्द्राणी का प्रमुख देवियों में महत्त्वपूर्ण स्थान कम गया। गुरुकुलों में श्रुति का उल्लेख बीजा मातृकाओं के अन्तर्गत और काव्यात ने कुमार सम्मेलन⁴ में सप्तमातृकाओं के अन्तर्गत किया है।

मत्स्य पुराण में इन्द्राणी को गजवाहिनी, बहुनेत्र प्रज्वाल और गदाधारिणी तथा सप्तर्षिपुत्रिणी बताया गया है।⁵ मारकण्डेय पुराण में भी इन्द्राणी को उपर्युक्त विशेषताओं के साथ इन्द्र के तपस्त्रियों से सम्बन्ध बताया गया है।⁶

1. मं 10 सूक्त 159-162, मं 10 सूक्त 159 : 14:2:1:8

2. काणे, पी पी : धर्मशास्त्र का इतिहास : खण्ड 3 : पृष्ठ 312

3. इन्द्राणि प्राहु नारिषु सुमर्गमुद्वम त्वम्
न ह्यस्या अपरं एव जरता मरते पति विवस्यादिन्द्र उत्तर ।

मं 10 सूक्त 159

4. कुमार सम्मेलन : 7/38

5. मं 10 सूक्त 201 : 32

6. दुर्गा सप्तशती : 8 : 21

वात्तराज के त्वर्कों से ज्ञात होता है कि तात्कालीन लोक संस्कृति में विवाह से पूर्व मन्दिर में कन्या द्वारा इन्द्राणी की पूजा एक अनिवार्य आचार था।¹ कृष्ण ने रुक्मिणी की इन्द्राणी की पूजा करते समय मन्दिर से अग्रत किया था।²
मणिभद्र :

भारतीय लोक धर्म में कितने समय यह की पूजा सर्वाधिक प्रचलित थी। इसका उल्लेख ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण उपनिषद्, गृह्य सूत्र, पुराणा जातक निकाय, पालि साहित्य के अन्य ग्रन्थ जैन आगम साहित्य, भाष्य पूर्णि कथा संस्कृत साहित्य के काव्य ग्रन्थों में मिलता है।³

इन यर्थों में मणिभद्र महात्त्वपूर्ण यक्ष था। अथर्ववेद में जिस महत्त्व कोर्यमणि की वर्ण है यर्थों का राजा मणिभद्र उसका स्वामी था।⁴ वैष्णव द्वारा बताया

1. [क] आदिष्टोऽस्मि देव्या यथास्मि भगवतीं तुष्टुदिं विद्व्या विवाहपूर्वकानाचार प्राप्तेन्द्राणी पूजार्थं वत्ता रुक्मिणी त्वरितं देवायतनं प्रापयितव्या।

स० ह० : पृ० 24

- [ख] तुष्टुदि : इन्द्रवरज्जाया युक्तामेव। यातमिन्द्राणी पूजार्थमाह्वयते।

स० ह० : पृ० 65

2. इन्द्राणी परभार्जनपरिहरव्यापारितां कन्यकां

विवातोपगतां हरे। यदहरत्त्वं जन्य यात्रागतः।

धर्म कि परितस्तद्वेष भवता ह्य प्रतं किं वा

किं वा बन्धुजनोयिता व्यवहृतिर्लोकस्थितिः कापि वा।

स० ह०:श्लोक 13 अंक 4 :पृ० 70

3. अग्रवाल, पृ० ११० : पृ० ११० लोक धर्म : पृ० 110

4. अथर्ववेद : 8:5:14

गयी यक्ष सूची, ¹ महानिददेश की सूची, ² मिलिन्द पंथ की सूची ³ विष्णु धर्मोत्तर पुराण ⁴ में मणिमूद्र देवता का उल्लेख हुआ है। ये सार्थवाहों के देवता माने जाते हैं। ⁵ इन यक्षों के स्थान कुले आकाश या के नीचे होते थे, और इन्हें चार दीवारों के घेर दिया जाता था। ⁶ इन्हें चैत्य या आयतन कहा जाता था आज इन्हें 'भौन' कहते हैं। ⁷ ऐसी लोक मान्यता है कि ये बाद से बचानेवाले देवता हैं। ⁸ लोक में जिन पंचवीरों का नाम आता है। उसमें मणिमूद्र का भी नाम आता है। ⁹

यक्षों में इस मणिमूद्र यक्ष का महत्त्व कुले के बाद दूसरे स्थान पर था। इस मणिमूद्र की पूजा किसी समय मथुरा और प्राचीन पद्ममावती ःग्वालियर तक थी। मथुरा में परछम गाँव से इस देवता की विशाल मूर्ति मिली है। बंगाल में आज भी मणिमूद्र घोर मानिक घोर के रूप में पूजा जाता है। ¹⁰ जैन ग्रन्थ 'सूर्य प्रज्ञप्ति' के अनुसार मिथिला नगरी से बाहर 'मणिमूद्र यक्ष' का चैत्य था। ¹¹ इसके भक्त 'गर्मसुखित मनोवृत्ति' से अपनी गोष्ठों में इसकी पूजा करते थे। ¹² कर्पूर चरित भाण के अनुसार यह परम शक्ति सम्पन्नदेव जन सामान्य में शंकर का

1. अग्रवाल, वासुदेव : प्रा० भा० लोकधर्म : पृ० 127
2. महानिददेश : 1 पृ०- 89 एवं 310
3. मिलिन्दपंथ : पृ० 190
4. विष्णु धर्मोत्तर पुराण : 3, 222, 1-107
5. अग्रवाल, वासुदेव : प्रा० भा० लोक धर्म : पृ० 130 एवं 135
6. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : पृ० 135
7. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : पृ० 130
8. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : पृ० 136
9. अग्रवाल वासुदेव : भारतीय कला : पृ० 129
10. अग्रवाल वासुदेव : प्राचीन भारतीय लोक धर्म : पृ० 134
11. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : पृ० 141
12. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : पृ० 137

दूसरा स्वल्प समझा जाता था जिस की पूजा जुआरों तक करते थे।¹ इस यज्ञ का वर्णन इस भाग में अनेक स्थलों पर आया है। धन प्राप्ति के लिए भी इसकी पूजा की जाती थी।

यात्रामहः :

यात्रा शब्द का तात्पर्य उत्सव या मेला या संस्कृत यात्रा शब्द से प्राकृत में 'जत्त' और आधुनिक हिन्दी में 'जात' शब्द बना है। यात्रा शब्द की प्राचीन काल में समाज भी कहते थे। इनका स्वल्प वर्तमान काल में जो मेलों का है, वही है। इनके मूल में किसी देव पूजा या धार्मिक पूजा का बोझ रहता था, किन्तु, वाद्य स्वल्प हूँतो-झुँतो, नाच-गान, मेला, तमाशा, छान-पान की मस्तकी से भरा हुआ था। नायक धम्म कहा की सूची में लोक प्रचलित पन्द्रह छोटी बड़ी यात्राओं का संग्रह है।²

प्राचीन काल में विभिन्न देवों-देवताओं के यात्रा महोत्सव मनाने की परम्परा थी, जो आज भी जगन्नाथपुरी की रथ यात्रा के रूप में देखी जा सकती है। ये यात्राएँ धार्मिक यात्राएँ हुआ करती थीं, जिसमें अपार जन समूह सम्मिलित होता था। इन यात्राओं के तीन रूप देखी में आते हैं-

॥१॥ किसी देवता के जन्म दिन अथवा किसी मन्दिर में देवता के प्रतिष्ठापना दिवस पर आयोजित उद्यान-यात्रा।

॥२॥ किसी विशिष्ट पर्व देवता के दर्शनार्थ भक्तों की यात्रा।

॥३॥ किसी तीर्थ स्थान की यात्रा।

यद्यपि धर्मचार्यों की धारिकारें और प्रचार यात्राएँ भी यात्राएँ ही कही जाती थीं, जिस प्रकार बंगाल में चैतन्य महाप्रभु की यात्राओं की लेकर आज भी टोल मजदूरे लेकर भजन कीर्तन गाते हुए भक्तों की यात्राएँ, किन्तु ये यात्राएँ बंगाल की वैष्णव भक्ति आन्दोलन की देन है, जबकि पहली तीनों यात्राएँ

1. कर्पूर चरित भाग : टीका ० प्रमुनाथ त्रिवेदी : पृष्ठ 25

2. पूर्वोक्त ग्रन्थ : टीका प्रमुनाथ त्रिवेदी : पृष्ठ 35-36, 38, 47

प्राचीन काल में भी प्रचलित थीं। नीलकण्ठ महादेव और चक्र स्वामी को यात्रारों इसी प्रकार की थी।

नीलकण्ठ यात्रा :

चन्देल क्षत्रीय राजाओं ने अनेक मन्दिर बनवाये थे। नीलकण्ठ महादेव का मन्दिर जो कालंजर दुर्ग पर स्थित है उनमें एक है नीलकण्ठ यात्रा महोत्सव कदाचित् महादेव की प्राण प्रतिष्ठा में मनाया जानेवाला वार्षिक महोत्सव था, जिसका विस्तृत वर्णन आज हमें प्राप्त नहीं होता, किन्तु आजकल देवोत्थानों एकादशी से कार्तिक पूर्णिमा तक मेला लगता है। जहाँ सहस्रों की संख्या में लोग दर्शनार्थ आते हैं। वत्सराज ने इसी नीलकण्ठयात्रा महोत्सव पर अपने रूपक कर्पूर चरित भाण, हास्य चूडामणि प्रहसन के अभिनीत किये जाने का वर्णन किया है।

चक्रस्वामी यात्रा :

चक्रस्वामी यात्रा के सम्बन्ध में कोई उल्लेख हमें प्राप्त नहीं होता है। कदाचित् यह किसी विष्णु मन्दिर की मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा के दिवस पर आयोजित होनेवाला कोई महोत्सव था जिसके अवसर पर वत्सराज ने अपने रूपक रुक्मिणीहरण के अभिनीत किये जाने का वर्णन किया है।²

1. रूपक षट्कम् : पृ० 23, 118

2. रूपक षट्कम् : पृ० 38

अध्याय-5
रीति रिवाज और लोक व्यवहार

महाकवि वत्सराज के रूपकों से तत्समय प्रचलित विभिन्न प्रकार के रीति-
रिवाजों तथा एक दूसरे के प्रति जनतामान्य के व्यवहारों का पता चलता है।
उक्त समय विवाह वैशाख मास में सम्पन्न होते थे।¹ प्रस्थान करते समय लोग
मांगलिक होम² एवं मुहूर्त देखकर³ यात्रा प्रारम्भ करते थे। विवाह में दूत द्वारा
सम्बन्धियों को बुलवाने⁴ की प्रथा थी। सम्पन्न लोग विवाह हेतु दूत द्वारा
दूसरों से कन्या भी माँगते थे।⁵ कदाचित् विवाह पूर्व कन्या को घर का चित्र
भी दिखाया जाता था।⁶ धनिकों एवं राजाओं में बहु विवाह प्रथा थी।⁷

1. ॥४॥ इहेव माधवे विवाहो भविष्यति ।

रु0 ह0 : पृ0 53

॥४॥ वैशाख एव रुक्मिणी विवाह ।

रु0 ह0 : पृ0 53

2. प्रयाण मांगल्यविधानहोमः ।

रु0 ह0 : श्लोक 16 : पृ0 50

3. इत सम्प्रधारितमेव प्रयाणम् । प्रियम्बद आनय मौहूर्तिकाः ।

रु0 ह0 : पृ0 51

4. अयि विजये । गच्छ तमानय शिशुपाल दूतम् ।

रु0 ह0 : पृ0 51

अयि सन्धानकू उत्तर्ष कृष्णं सरामम् ।

रु0 ह0 : पृ0 51

5. मुठ विकार एव व्याकरोति प्रयोजनासिद्धिं ।

रु0 ह0 : पृ0 41

प्रियम्बद किं न चिह्नयति ।

रु0 ह0 : पृ0 41

6. देवि लक्ष्मी किं विलम्बयते ? एष खलु चित्रपटो गंगादेव्या प्रेषितः
पूज्यताम् ।

समुद्र0 : पृ0 158

7. ॥क॥ तत्र गोपी सहस्रमध्ये न कापि गोपी ता नि भाग्यानि अभ्यर्थिता ।

रु0 ह0 : पृ0 57

॥ख॥

यावदेव हरिहृदये रुक्मिणी नामेति अक्षारो मन्त्रः ।

संचरितः तावदेन उद्दसितमितर दयिताभिः ।।

रु0 ह0 : श्लोक 3 : पृ0 50

यथाशक्ति दहेज प्रथा का भी प्रचलन था।¹ इसी प्रकार सती प्रथा।² और पर्दा प्रथा³ भी प्रचलित थी। लोग अपने कुलाचारों का पालन करते थे।⁴ ग्रहण के बाद दान देने,⁵ अमंगल के समय शान्ति-पाठ करने⁶ व्रत के बाद पारण करने,⁷ छेतों में नकली आदमी [धोखे] खड़ा करने⁸ को प्रथाएँ लोक में विद्यमान थी। लोग हर्ष के अवसर पर दूसरों को वर्धापन [बधाई] देते थे।⁹

1. अयं च कन्यादानस्तु दक्षिणा कौस्तुभोमणिः ।

तद्युग्म 0 सं० 190

2. [1] तस्मै विजयार्थं प्रसूतो आर्यपुत्रे दिलीपि मुहूर्तानिप्रतिपालयिष्ये ।

पुनरेतत् निष्पद्युक्तं तज्जु पावक समागमे परित्यक्षामि ।।

तद्युग्म 0 : पृ० 183

[2] नास्त्य तस्य तुभ्यस्य भद्रम् । तदेहि ज्वलन प्रसंगेन आत्मानं कृतार्थं कुर्मः ।

तद्युग्म 0 : पृ० 184

3. [क] गवाक्ष जालान्तरेण विलोक्य [प्रेक्ष्यं प्रेक्ष्यं प्राप्नोति नरः पतयः ।

स० ह० : पृ० 59

[ख] सोत्कण्ठयुर्ध्वं सोधाग्रं ग्रहितं लोचनो रुक्मिणीं गवाक्षं लम्बितं मुञ्चति

विलोक्य [नूनं रुक्मिणीयं, संवदत्पा मेखयम् ।

स० ह० : पृ० 61

4. त्रिपुरबाह्विः : श्लोक 5 : पृ० 100

5. मार्थं प्रतोक्षस्व सूर्य चन्द्रोपरागादि । मूर्धं पश्यति मे महादानानि ।

त्रिपुर 0 : पृ० 110

6. तपावदहं शान्तिकं वैरिवचना प्रकारं धर् कर्णे स्वमेव [समाप्या गच्छामि ।

त्रिपुर 0 : पृ० 110

7. किराता 0 : श्लोक : 40

8. अयि हरिसुत धन्यास्तेऽपि तान्नाः पुमानि ।

किराता 0 : श्लोक : 40

9. अहं खलु चन्दनक वर्धापयितुं प्रधापितोऽस्मि ।

कर्पूर 0 : पृ० 34

वत्सराज के स्वकों से न केवल रीतिरिवाजों का हो, अपितु लोक जीवन में लोग एक दूसरे के साथ कैसा व्यवहार करते थे, इसका खासा चित्र उपस्थित होता है। गुरु-शिष्य, स्वामी-सेवक, पिता-पुत्र, भाई का भाई के साथ कैसा व्यवहार था, इसका भी पता चलता है। लोक जीवन में उस समय से संयुक्त परिवार होते थे।¹ गुरु का नाम लेना उचित नहीं समझा जाता था।² प्रातः काल उठकर लोग गुरु का पैर छूते थे।³ विद्याध्ययनोपरान्त गुरु को दक्षिणा दी जाती थी।⁴

कुछ गुरु अल्पज्ञ भी होते थे। शिष्यगण ऐसे गुरुओं के प्रति अच्छा व्यवहार नहीं करते थे।⁵ वे उन्हें चिढ़ाते थे और उनकी नकल उतारा करते थे।⁶ कुछ शिष्य हमेशा गुरु से धन प्रदान करनेवाली विद्या को सिखाने के लिए कहा करते थे।⁷ कभी-कभी गुरु अपने शिष्यों को पिटाई कर देते थे।⁸ क्रोधी स्वभाव के

1. स्वक शब्दकम : 149-150

2. ज्ञान०- धिक् मूर्खः न गृह्यते गुरुणां नाम।

ज्ञान- विद्यादानादि मुक्तौ प्रथीयांस।

हा० घू० : पृ० 124

3. तदहं गत्वा गुरोर्भगवतो मार्गवस्य पादारविन्दानि विदधे

भगवन् मार्गव सख त्वां अभिवादयते।

त्रिपुर० : पृ० 109

4. देव देव जगद्गुरोः किं ते दक्षिणानि ददामि।

किरात० : पृ० 82 टो० रवि०

5. हा० घू० : पृ० 130

6. हा० घू० : पृ० 124-125

7. न च एतेन किमपि प्राप्यते। तस्मै केवली-विद्यामध्यापय, यथा मे जनस्य धनानि स्वाधीनानि भवन्ति।

हा० घू० : पृ० 126

8. किं माम् ताड्यसि ?

इन गुरुओं के पास शिष्य नहीं फटकता था।¹ घरित्रहोन एवं अज्ञ गुरुओं को शिष्य ब्लैकमेल करने का प्रयास करता था।² दूसरों के साथ धूर्तता करने के मुद्दे पर इनमें रेक्य पाया जाता था।³ कुछ गुरु और शिष्य दोनों अच्छे स्वभाव के होते थे।

जैसा आज गाँवों में दिखाई पड़ता है, तत्कालीन लोक जीवन में छोटे-बड़े का बड़ा लिहाज था। लोग बड़ों का कहना मानते थे⁴ और उनके आने पर स्वयं आस न छोड़ देते थे, और उन्हें आदर सहित बैठाने एवं नमस्कार करते थे।⁵ नमस्कार को यह परम्परा कभी-कभी दण्डवत् प्रणाम के रूप में दिखाई पड़ती है।⁶ बड़े लोग भी छोटों के इस शिष्टाचार के कारण आशीर्वाद प्रदान करते थे।⁷

1. न आगमिष्यामि चण्डालिनः खलु त्वम्।

हा० घू० : पृ० 125

2. शिष्यः ॥ अंगुलीयकमुपनीय ॥ अलंकरोतु आर्य रत्नेनात्मानम्।

हा० घू० : पृ० 133

3. हा० घू० : पृ० 129-131 एवं पृ० 133

4. गुरु निदेश क्वां वदोऽहं तपसि प्रवृत्तः।

किरात० र० 120टो० रविनाथ

5. महेश कृष्णौ- ॥ स प्रश्रयमुत्थाय ॥ अभिवादयावहे अत्र भवन्तं जगज्ज्येष्ठं। इतः आत्यतां सह महेन्द्रादिभिर्विवायथम्।

सागर : ॥ सप्रश्रयमु ॥ स्थ वः प्रणमति समुद्रः

कृष्ण : ॥ सगौरवम् ॥ निषीदतु प्रत्यासन्नो सवत्सोभमान्।

समुद्र० : पृ० 189

6. शंकरमालोक्य सतम्भं नमस्ते नमस्ते इति साष्टांगमवनौ निपतति।

किराता० : पृ० 19

7. बलिः-सतम्भं यथावदुपस्थाय प्रणमति

शुक्र :-वर्दतां वर्दतां कलि :।

समुद्र० : पृ० 181

स्वामी-सेवक सम्बन्ध तत्समय मधुर था। स्वामी के प्रति द्रोह करना अच्छा नहीं समझा जाता था।¹ सेवक अपने स्वामी के आज्ञाकारी,² थे, उन्हें जिन कार्यों पर नियुक्त किया जाता था, उसे पूरा करते थे।³ वेदकूप किस्म के सेवक धूर्तों द्वारा ठग लिये जाते थे।⁴ समाज में आलसी किस्म के सेवक भी थे।⁵ क्रोधादि की स्थिति में वे अपनी स्वामिनि आदि की बातें नहीं मानते थे। कभी-कभी ये उल्टा सोचा भी बोल जाया करते थे, और झगड़ खाते थे।⁶

तत्कालीन लोक जीवन में पिता और पुत्र का सम्बन्ध अत्युत्तम था। पुत्र पिता का कहना मानता था। वह पिता की आज्ञा को प्रतीक्षा करता था⁷ किन्तु पिता के बच्चों का कभी उत्प्रेषण नहीं करता था।⁸ उनके आगमन पर सम्मानार्थ खड़ा हो जाता था। पिता उसका शिर स्पर्शकर, आशीर्वाद देता

1. रू० ह० : चतुर्थ अंक : श्लोक 15

2. रू० ह० प्रतिहारो, सन्धानक आदि का चरित्र

3. दोषक :- ॥ सप्रणामं सप्रभ्रमम् ॥ देव प्रेषितोऽस्मि रामेण कौण्डिनपुराञ्ज प्रयाणकं कारयितुम् ।

रू० ह० : पृ० 48

4. कर्पूर चरित में चतुरक का चरित्र।

5. मुदगरक मुदगरक! जागरय जागरय। बाढ़ खलु स्य दष्टो निद्रोरग्या,
नोलकण्ठो यदीयं जागरयति।

ह० घू० : पृ० 121

6. आः किमेतत् १ तिष्ठत तिष्ठत मा ज्वलन्ने द्रम्पत।

ह० घू० : पृ० 140

7. मुदगरक! त्वत्स्य प्रणाशे क स्य वक्राक्षर कालः ॥ इति चपेत्ते ताडयति ॥

8. रामः- कि आदिशान्ति गुरवः

रामः- अयि कृष्ण प्रतोक्षस्व किं आदिशान्ति गुरवः।

रू० ह० : पृ० 51

था ।¹

रूपकों के अनुसार भाई-भाई में अत्यन्त प्रेम था । उनके सम्बन्ध अतिशय मधुर थे ।

वत्सराज के अग्र लोक जीवन के अति निकट है । इसलिए उनमें लोक जीवन और उसकी संस्कृति तथा उसकी भाषा का स्पष्ट प्रभाव है । लोक जीवन के पात्र एक बड़ी संख्या में उसमें विद्यमान हैं । नाट्य शास्त्रीय विधानानुसार, ये पात्र संस्कृत के स्थान पर प्राकृत बोलते हैं । लोक जीवन के करीब होने के कारण इन पात्रों की भाषा में लोक प्रचलित अनेक विशेषताओं का आ जाना स्वाभाविक है । इसीलिए वत्सराज के रूपकों के पात्र जब भाषायी व्यवहार करते हैं, तो बड़ी संख्या में लोक प्रचलित शब्द, लोकोपमान, लोकोक्तियाँ एवं मुहावरे उनके कथोपकथनों आदि में स्वयं समाहित हो जाते हैं और रूपकों को लोक जीवन के निकट पहुँचा देते हैं, जिससे लोक संस्कृति का एक जीवन्त चित्र हमारे दृश्य-पटल पर अंकित हो जाता है ।

वस्तुतः ये सब विशेषताएँ लोक साहित्य की अंग हैं । लोक साहित्य मौखिक परम्परा से प्राप्त होता है, किन्तु फिर भी लोक साहित्यगतः व्यवहार से हमें उनमें निम्न भाषायी विशेषताएँ दृश्यगत होते हैं ।

§§-मुहावरा :

मुहावरा शब्द अरबी भाषा का शब्द है इसका अर्थ है बातचीत और सवाल करना । अंग्रेजी में इसे 'इडियम' कहते हैं । संस्कृत में मुहावरों का प्रयोग तो है,

1. राम :- अयि कृष्ण । तदभ्यु तिष्ठतावहे तावत्पितरौ ।

वसु० § उभौ शिरस्या ग्रायः श्रूयास्तां समस्त मनोरथ पात्र भवन्ती ।

सु० ६० : पृ० ५०

2. §क§ अहो जगत्पिड्याता प्रीतिरनयो ।

सु० ६७ : पृ० ३९

§ख§ अहो भावस्य सौमित्रम् ।

समुद्र० : पृ० १४९

किन्तु उसके लिए अलग से कोई नाम नहीं है। इसके लिए वाग्रोति, वाग्धारा, वाग्धृति आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। वस्तुतः 'मुहावरा लाक्षणिक प्रयोग है। इसके द्वारा भाषा को वक्रता एवं चटोलापन प्राप्त होता है। लाक्षणिक का यह अर्थ नहीं है कि लाक्षणिक प्रयोग और मुहावरा समानार्थी है, या हर लाक्षणिक प्रयोग मुहावरा है। लाक्षणिकता के साथ उसका अनिवार्य गुण है, रुढ़ होना अर्थात् उस अर्थ में वह लाक्षणिक प्रयोग जन प्रचलित हो।' § हिन्दी मुहावरे : प्रतिभा अग्र० पृ० ३॥ वत्सराज के रूपकों की भाषा लोक जीवन के धिल्लुल करीब है। अतः उनके रूपकों में लोक प्रचलित मुहावरे पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं जो निम्नलिखित हैं :

| | | |
|------------------------------------|-----------------------------------|---------------------------|
| §1॥ अनाथमिव ताडयति | हा०पृ० : पृ० 139 | अनाथ की तरह पोटना |
| §2॥ अपमृत्यु मुखात् उद्धतः | किराता० : पृ० 52 | मौत के मुख से बचाना |
| §3॥ अपमृत्युमाहूयात्मनि पातयति | टो० रविनन्दन ० रु० ह० : पृ० 67 | अपने क्लेश खुद मौत बुलाना |
| §4॥ अपितोऽपि हस्ते न ति तिष्ठति | तमुद्र० : पृ० 153 | देने पर न टिकना |
| §5॥ अप्रमत्ति मग्नानां क्व जीवितम् | त्रिपुर० : पृ० 80 | जल में डूबे मौत न होय |
| §6॥ अमंगल व्याहरति | हा० पृ० : पृ० 34 | असुख बोलना |
| §7॥ अलोक भ्राता उत्पद्यते | कर्पूर० : पृ० 40 टो० प्रभुनाथ | झूठे भाई बनना |
| §8॥ आनर्थ्येऽपि अस्ति अर्थः | तमुद्र० : पृ० 150 | वेमतलब में भी मतलब होना |
| §9॥ आशामय हृदमपि द्रव्यन्ति पाशम् | कर्पूर० : पृ० 50 टो० प्रभुनाथ | आश होने पर भी आश लगाना |
| §10॥ उत्कीर्णैव मनसि वर्तते | कर्पूर० : पृ० 12 | मन में खुदना |
| §11॥ कर्णौ शीतलायतः | हा० पृ० : पृ० 134 | कान जुड़ाना |

| | | |
|----------------------------------------|----------------------------------|-------------------------------------------|
| ॥12॥ कलकलः कृतान्त नगरे वर्तते | किराता० : पृ० 64 टो० रविनन्दन | यम की नगरी में भी कलकल ध्वनि होना |
| ॥13॥ कलहवल्लो पल्लविता | त्रिपुर० : पृ० 89 | झगड़ा बढ़ाना |
| ॥14॥ कालोरगो विनिर्गता | त्रिपुर० : पृ० 99 | समय रूपी सर्पिणी का निकलना |
| ॥15॥ अतम्बद मन्त्रयसि | हा० पू० : पृ० 122 | देमलब का सोचना |
| ॥16॥ किं कारणं कमण्डल जलं प्रवाहयति | | व्यर्थ में धौंस जमाना |
| ॥1७॥ कीर्ति स्तम्भं भजयिष्यति | किराता०: पृ० 52 टो० रविनन्दन | नाम डुबाना |
| ॥18॥ कृतान्तं व्याहरामि | समुद्र ० : पृ० 154 | मौत को बुलाना |
| ॥19॥ कृतान्तायितम् | त्रिपुर० : पृ० 951 | यमराज बन जाना |
| ॥20॥ किमिति स्वेनैव स्वनाम प्रो-उति | किराता० : पृ० 43 टो० रविनन्दन | बुद ही अपना नाम मिटाना |
| ॥21॥ ग्रन्थौ बन्धनन्तु | रु० ह० : पृ० 21 | गाँठ बाँधना |
| ॥22॥ निष्क्रामति उपशमौ हृदयात् | रु० ह० : पृ० 48 | हृदय से शान्ति गायब होना |
| ॥23॥ चरणयोरुद्दीतः | क्यू० : पृ० 47 टो० प्रमुनाथ | पैर पकड़ना |
| ॥24॥ तुणाय मन्यते | रु० ह० : पृ० 40 | तिनका समझना |
| ॥25॥ दत्ता मया प्राणाभिक्षा | किराता० : पृ० 65 | प्रणों की मोख देना |
| ॥26॥ दम्भो लि दाषानलस्य तुणानि | त्रिपुर० : पृ० 79 | आग का तिनका - |
| ॥27॥ दष्टो निद्रोरग्या | रूपक षट्कम् : पृ० 121 | सर्पिणी नोद के द्वारा डसा जाना |
| ॥28॥ दाषाग्नि आलिंगति | रु० ह० : प्रथम अंक श्लोक 12 | आग को गले लगाना |
| ॥29॥ दिग्गज दूषणार्थ शवाकानां मेलकः | त्रिपुर० : पृ० 87 | हाथी मारने के लिए खरगोशों का बटोर होना |

| | | |
|---------------------------------------------------|----------------------------------|-----------------------------------------|
| ॥30॥ द्वितीयं जिह्वा दास्यति | रुद्र0 : पृ0 41 | दूसरी जोम देना |
| ॥31॥ दुग्धाम्बुधि दीर्घिकायाः कतमः उत्साह भंगः | समुद्र 0 2/21 | दूध को तलैया में उत्साह होनता होना |
| ॥32॥ दोलाधिरुद दोलते जोषिताशा | रुद्र0 : पृ0 55 | प्राणों का झुला झूलना |
| ॥33॥ दोहदेनैव फलिष्यति | समुद्र0 158 | पेटवाली को इच्छा से फलना |
| ॥34॥ नटन्ती भ्रुवल्ली | समुद्र0 2/1 | मौंह नचाना |
| ॥35॥ न बिकत्थनो मिध्या व्याहरिष्यामि | किराता0 : पृ0 49 टो0 रविमन्दन | झूठ बोलकर डोंग हाँकना |
| ॥36॥ न सहन्ते आत्मनः समाहिकम् | हा0 घू0 : पृ0 125 | अपने से अधिक को वर्दाशित न कर पाना |
| ॥37॥ न संवरति आत्मनो मृत्युदारं मुखम् | हा0 घू0 : पृ0 122 | मौत के द्वार रूपी मुख को न बन्द करना |
| ॥38॥ निद्रां नाट्यते | कर्पूर0 2/20 | नींद का नाटक करना |
| ॥39॥ पर मूर्धनि निज दोषा रोपणे निपुणाः | रुद्र 0 : पृ0 376 | अपना दोष दूसरे के सिर पर |
| ॥40॥ पारदोऽति विपत्पारा- वारस्य | त्रिपुर0 : पृ0 79 | विपत्ति का खेवैया होना |
| ॥41॥ पौर्ण्य परोक्षे | किरात0 : पृ0 68 टो0 रवि0 | ताकत अन्दाजना |
| ॥42॥ फुल्ल गल्लोजल्प | किराता0 : पृ0 52 टो0 रवि0 | गाल फुलाकर बोलना |
| ॥43॥ भ्राष्टपत् दह्यमाने | समुद्र0 : पृ0 160 | भाड़ की तरह जलना |
| ॥44॥ मा ज्वलने क्षम्यत | त्रिपुर0 : 2/9 | आग में कूदना |
| ॥45॥ माया वंचित सकल भुक्ता चोरेः परिमुषिता | हा0 घू0 : पृ0 140 | चोर के घर में छछोर |
| ॥46॥ महोत्सवं मानयिष्यति | हा0 घू0 : पृ0 122 | जयन मनाना |
| ॥47॥ मृतेव सुप्तास्मि | हा0 घू0 : पृ0 132 | मरी ता सोना |

| | | |
|----------------------------|--------------------|----------------------|
| §48§ यम नगर दौवारिकवधः | रूपक षट्कम् 120 | मौत का बुलावा आना |
| §49§ लब्धमप्लब्धमेव | त्रिपुर0 : पृ0 78 | पाया न पाया बराबर |
| §50§ क्षीन्ति शरासारम् | किराता0 : पृ0 63 | वाणों की कर्षा होना |
| | टी0 रविनन्दन | |
| §51§ वाडवाग्नौ मा ब्रम्पां | रु0 ह0 4/12 | आग में कूदना |
| कुरु | | |
| §52§ तशल्पमिव तप्यते | त्रिपुर0 : पृ0 81 | कटि को तरह चुमना |
| हृदयम् | | |
| §53§ सामान्य गणनाऽपि | त्रिपुर 0 : पृ0 81 | तनिक भी न गिनना |
| न गणयति | | |
| §54§ हस्तिपत्तनं संवृतम् | हा0 घू0 : पृ0 46 | हाथी की तरह गिरना |
| §55§ हासेन स्फुटितोऽस्मि | क्यू0 : पृ0 19 | |
| | टी0 प्रमुनाथ | हँसो से फुरेहरा होना |

लोकोक्तियाँ :

संस्कृत साहित्य में लोकोक्तियों को सुभाषित या सूक्ति भी कहते हैं। सुन्दर रीति से कही गयी उक्ति ही सूक्ति है। इसी उक्ति को यदि लोक अर्थात् जन साधारण मनुष्य जब प्रयोग में लाता है तो उसे ही हम लोकोक्ति कहने लगते हैं। इसे कहावत भी कहते हैं।

विश्वनाथ दिनकर नरवणे के अनुसार, 'कहावत ऐसा प्रादेशिक वचन है, जो सदियों से एक आशय लेकर चलती आई है। लोगों में चलती पुर्जो है और प्रायः सीधे-सादे ढंग से आशय न व्यक्त करते हुए आशय को किसी अलंकार में उषमा में, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त की साड़ी पहनकर सामने आती है। इसमें अभिधा की अपेक्षा कभी लक्षणा और कभी व्यंजना प्रधान रहती है। § भारतीय कहावत संग्रह : पृ0 108

इन कहावतों या लोकोक्तियों का प्रयोग वत्सराज के रूपकों में पर्याप्त मात्रा में हुआ है, जो निम्नलिखित है :

§1§ अनुयिताचरणं जनाः विपत्प्रवेशं द्वारं वदन्ति। रु0 ह0 2/19

§2§ अर्थतुराणां न सुहृद न बन्धुः। हा0 घू0 : पृ0 144

॥३॥ उज्जुम्भो हि मृत्यानां कापि शक्तिः प्रमोपुरः । समुद्र० : पृ० 163

॥४॥ एवं विधं बुद्धेरैव एवं फलं युज्यते । कर्पूर० : पृ० 29 : टी० प्रमु०

॥५॥ कथमन्धबलस्तेषां पाण्डवानां भवेदभयम् ।

तद्वृत्तनयनः पक्षे येषामुज्जागरः सदा ।। किराता० 2/36

॥६॥ चक्षुष्यमेव यो नावतरति कस्तेन सह प्रेमबन्धः । समुद्र० : पृ० 153

॥७॥ छागोमुहूर्त्वाति गाठवर्षछागेन सार्द्धं प्रसरत्प्रमोदः ।

कण्ठोरं वीक्ष्य तत्राब्दकण्ठं कोवेत्ति वैकल्यमुपैतिकोदृक् ।। रुद्र० 1/40

॥८॥ ज्वलद्दहनौ गेहे रचयति कः चतुष्कः । हा० चू० : पृ० 132

॥९॥ न हः छार्तहृदयायाः प्रतिभाति बसन्तः । हा० चू० : पृ० 123

॥१०॥ दिवा निरोक्ष्य वक्तव्यं रात्रौ नैव य नैव य । कर्पू० : पृ० 2

॥११॥ न खलु केनापि अग्निं दग्धं श्रूयते । हा० चू० : पृ० 122

॥१२॥ धूर्तैः त्रासमित्थं दधति दिक्कियो मानवा के वराकाः ।

॥१३॥ नहि वापी मरालिकायाः पितामहमरालं प्रेमपात्रं भवितुमर्हति ।

॥१४॥ न खलु अगृहोत्तमुदरति रमणीयं वस्तु । हा० चू० : पृ० 119

॥१५॥ फलितोष्णं खेदानां विभ्रामो मण्डानयते । समुद्र० : पृ० 152

॥१६॥ यतो धर्मस्ततः कृष्णः यतः कृष्णस्ततो जयः । रुद्र० : पृ० 86

॥१७॥ यत्रचवस्तु लब्धम्यं न तस्मै रोषायितव्यम् । हा० चू० : पृ० 131

॥१८॥ वनं हरिण्या हस्यते मुगांकं हरिणेऽनुरागः । रु० व० : पृ० 36

॥१९॥ विधिं विपरित तया वैमक्यमपि विपरितफलं भवति । त्रि० वा० : पृ० 103

॥२०॥ समय एव सर्वं शोभते । रु० व० : पृ० 118

लोकोपमान :

कवि वत्सराज ने अपने स्वरूपों में अनेक लोक मूलक उपमानों का प्रयोग किया है जो कवि सम्प्रदाय में बहुत प्रसिद्ध नहीं हैं, तथा जिनका शास्त्र से सीधा सम्बन्ध नहीं है वे निम्न हैं -

उपमेय

स्फुरिङ्ग

वाणी

उपमान

गुंजा

नदी

त्रिपुर० : पृ० 115

त्रिपुर० : 4/6

| | | |
|--------------------|----------------|-------------------|
| उत्ताल रसना | तडिदिम मेघ | त्रिपुर० : 3/20 |
| भुजदण्ड | स्तम्भ | त्रिपुर० : 3/22 |
| सेना | वन | त्रिपुर० : 1/22 |
| दान से होन लक्ष्मी | गौ | त्रिपुर० : 1/5 |
| पत्थाक्षर | टंक | रु० ह० : 2/5 |
| षा मिनी | अर्गला | रु० ह० : पृ० 45 |
| कौस्तुभ | उपस्त्राकल | रु० ह० : 1/2 |
| पृथु रद | कुददाल | किराता० : 1/28 |
| पृथुरद | कुठार | किराता० : 1/28 |
| देह वल्ली | हिमकर लेखा | कर्पू० : 1/17 |
| रात्रि | शम्भली | कर्पू० : 1/10 |
| बसन्त | घोर | हा० घू० : 1/10 |
| बाल करा | पुराण तोधु धार | हा० घू० : पृ० 119 |
| तिमिर | घोर | हा० घू० : 1/6 |
| हरिणार्थक लोचन | सुगशावक त्रास | समुद्र० : 1/61 |

इसके अतिरिक्त रूपकों में प्रहेलिका जैसे वर्णन मिलते हैं, किन्तु वे प्रहेलिकाभास कहे जा सकते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वत्सराज ने अपने रूपकों में रीति-रिवाजों और लोक व्यवहारों का अच्छा खासा चित्रण उपस्थित है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अध्याय 6
लोक-जीवन के विविध रूप

वत्सराज के स्वरूपों में हमें तत्कालीन लोक जीवन के विविध रूपों का दर्शन होता है। उस समय का समाज मुख्यतः वैदिक संस्कृति और वैदिकेतर संस्कृति इन दो वर्गों में बँटा था। वैदिक संस्कृति के अनुयायी वर्णाश्रम व्यवस्था के पोषक थे, जबकि वैदिकेतर संस्कृति अनेक उपधाराओं में विभक्त थी। उसमें वर्णाश्रम व्यवस्था का कोई स्थान न था। यही कारण है कि वैदिकेतर अर्थात् लोक संस्कृति में लोक जीवन की विविधता ही उसकी संजीवनी शक्ति थी। हम यहाँ प्रथमतः लोक जीवन में श्रिष्ट जीवन के प्रभाव अर्थात् लोक जीवन पर वैदिक संस्कृति के प्रभाव स्वरूप व्युत्पन्न समाज का अवलोकन करेंगे।

वर्ण-व्यवस्था :

तत्कालीन लोक जीवन में ब्राह्मणों का महत्वपूर्ण स्थान था।¹ वे उत्तरदायी पदों पर नियुक्त किये जाते थे, तथा प्रतिदिन हवनादि कार्य करते थे। ब्राह्मणों द्वारा ही देवताओं को हव्य-कव्य मिलता था। वे पौरोहित्य कर्म भी करते थे।⁴ अनिष्ट समाप्ति के लिए अनुष्ठान एवं मन्त्रादि का प्रयोग उन्हीं के द्वारा होता था।⁵ मान-अपमान की चिन्ता छोड़ कर्तव्य पालन में वे मग्न रहते थे।⁶

1. आर्य षिदाशयः। सर्व सन्देह विषोपरामकारणं ब्राह्मण इति मत्वा त्वां प्रणमामि।

त्रिपुर० : पृ० १०

2. दानवगुत्नाहमस्य साधिव्ये पौरोहित्ये च नियुक्तोऽस्मि।

त्रिपुर० : श्लोक 32 : पृ० ११

3. [क] रुक्मिणी० : श्लोक 29 : पृ० 74

[ख] उर्ध्वस्थ लोकानपि हव्य-कव्य प्रवर्ष्य प्रोण्यते तलस्थाः।

त्रिपुर० : श्लोक 32 : पृ० 83

4. त्रिपुरदाह : पृ० ११

5. कौण्डिन्य। स हि धूते मदोय मन्त्रप्रभादिजयमाकांक्षति। तदेहिमन्त्र जपयोग्य विजनप्रदेशम् आश्रयावः।

हा० पू० : पृ० 132

6. तमुद्र० : पृ० 182-184

ब्राह्मण का अनर्गल प्रलाप भी क्षम्य था ।¹ ब्राह्मणों और गुरुजनों का इतना अधिक इतना अधिक सम्मान था कि उनके आगमन पर राजा तक आसन छोड़ देता था ।²

किन्तु लोक में अनेक ब्राह्मण दुष्ट स्वभाव के भी थे। वे दम्भ एवं असंयम से ग्रस्त थे तथा अपने धूर्ततापूर्ण कृत्यों से बाज नहीं आते थे। लोगों को बेवकूफ बनाकर हँस लेते थे।³

क्षत्रिय युद्ध कुशल होते थे। युद्ध करना उनका धर्म⁴ था। उन्हें धर्म का रक्षक एवं शरण्य कहा गया है।⁵ जनहित में दुष्ट को दण्ड देना उचित था।⁶ क्षत्रिय धर्म पराङ्मुख क्षत्रिय⁷ वर्णतर⁸ अथवा शरणागत⁹ पर बार करने की अनुमति नहीं देता था। इसी प्रकार सकाकी¹⁰ बालक¹¹ तपस्वी¹² तथा

1. आः ब्राह्मणोऽसि किं करोमि। निरंकुश रतनो व्याहर यथा रोचते।

त्रिपुर० : पृ० 77

2. ॥क॥ ततः प्रविशति सन्धानकेन अनुगम्य मानो मार्गव॥ बलि सतम्भम् यदावदुपस्थाय
प्रणमति।

समुद्र० : पृ० 181

॥ख॥ कलाकरण्डकः ॥ विलोक्य सतम्भमुपसृत्य॥ भगवन् ज्ञानराशिः।

हा० चू० : पृ० 147

॥ग॥ अर्जुनः ॥ यथावद्व्युत्थाय॥ पैयाघ्नोत्रो मध्यमपाण्डवोऽभिवादयते भवान्।

किराता० : पृ० 6

3. हास्य चुडामणि में ज्ञानराशि का चरित्र

4. किराता० : श्लोक 9 : पृ० 3 एवं रुक्मि० श्लोक 3 : पृ० 67

5. रुक्मि० : श्लोक 5 X पृ० 47 एवं श्लोक 19 : पृ० 52

6. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : श्लोक 12 : पृ० 49

7. बलदेव : अहह प्रत्यासन्ना सव किन्तु पराङ्मुखा। कथं इमान् सक्ताकरोमि।

रु० ह० : पृ० 67

8. किराता० : श्लोक 43 : पृ० 16

9. त्रिपुर० : श्लोक 15 : पृ० 114

10. हरकिरातः : रे रे चपलाः किराताः स्व किं वीरधर्म। यद्ययं गणना बाह्या, स्वः
च स्वः मुनिवीरः तदपसरत अपसरत। किराता० : पृ० 15

11. आः बालको विज्ञात सर्वतापं योधयिष्यति १ एवं त्रिपुर० र० 21 : पृ० 105

12. किराता० : श्लोक 18 : पृ० 50

स्त्री पर शस्त्र उठाना¹ अथवा विवासोपगत कन्या का हरण² युद्ध से भागना या कतराना³ अक्षम्य अपराध था।

क्षत्रियों की सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध में इससे अधिक जानकारी वत्सराज के स्मृतियों में नहीं मिलती।

वर्णाश्रम से बहिर्भूत जातियाँ :

वत्सराज के स्मृतियों में हमें वर्णाश्रम से बहिष्कृत जंगलों में निवास करनेवाली किरात आदि जातियों का वर्णन प्राप्त होता है।⁴ इस दृष्टि से किरातार्जुनोपम व्यायोग अध्येतव्य है। ये जातियाँ आठेठ प्रिय होती थीं। घनुष बाण से शिकार कर माँसादि से जोवन निर्वाह करती थी⁵ एवं शरने का पानो पीती थी।⁶ इनके अतिरिक्त घिट, घेट, केया, स्थापक, सूत्रधार नट प्रतिहारो सन्धानक, बन्दो, सूत एवं घरेलू नौकरों आदि का उल्लेख स्मृतियों में मिलता है।

आश्रम-व्यवस्था :

स्मृतियों के अनुसार ब्रह्मचर्य आश्रम में बाल गुरु के पास विद्यापार्जन करता था।⁷

1. रुक्मिणी : श्लोक 14 : पृ० 70

2. रुक्मिणी० : श्लोक 13 : पृ० 70

3. बाल्देव : न ते वीराभिमानिनः पलायन्ते। रे रे शिषुमाल बालिश पलायनपरः किमिति भ्य व्याकुलो विमलक्षत्रकुलाचारमतिक्रामसि।

रुक्मि० : पृ० 66-67

4. स्मृतक षट्कम् : पृ० 11, 12, 14, 15

5. मास मुहुर्वन महोष्ण गवेषयन्ति, तत्पञ्चोपनैक शरणाः शबराः किराताः।

तेषां वराह मृगरोहिष खड्गरंकन्यकाच्छिदास्तु कतमोऽयमहोप्रकर्षः॥

किरात० : श्लोक ७

6. आप्रत्यूष प्रदोषे विपिन विहरणैरामिषाहारकारः प्राप्तेयस्यन्द कल्पं परिपिबसि मुहुर्नैर्झरं स्वच्छम्भः।

किरात० : श्लोक 36 : पृ० 13

7. ततः प्रविशति शिष्यमध्यापयन् भगवान् ज्ञानराशिः।

हार्० यू० : पृ० 124

बल्कल, ¹ कुशासन ² एवं हस्तलिखित ग्रन्थों ³ का प्रचलन था। कभी-कभी गुरु स्वयं लिखकर विद्यार्थी को दे दिया करते थे जिससे वे स्वाध्याय करते थे। ⁴ सन्यासोगण मठों में रहकर ब्रह्मचारियों को विद्यादान देते थे। ⁵ सन्यासी मुण्डित शिरवाले होकर ⁶ दण्ड धारण करते थे।

गृहस्थाका कर्तव्य सत्पात्र को दान देना एवं सेवा करना था। ⁸

विवाहः

वत्सराज के रूपकों से हमें लोक जीवन में प्रचलित ब्राह्म, गान्धर्व एवं राक्षस विवाहों का पता चलता है। ⁹ यद्यपि इन विवाहों में कुछ शास्त्रीय विधि से सम्पन्न होते हैं, किन्तु उनका आधार लोक है। इसमें बहुत सारी लोक परम्पराओं का पालन करना अनिवार्य है। राक्षसादि विवाहों का प्रचलन आज भी असम्भ्य निषाद आदि जातियों में है। रूपकों में वर्णित ब्राह्म विवाह में कुल, वय, वर तथा घर देखकर विवाह किया जाता था, ¹⁰ वह आज भी लोक में प्रचलित है।

1. हा० चू० : पृ० 128

2. पूर्वोद्धृत ग्रन्थ : पृ० 125 तथा समुद्रमंथन समवकार : पृ० 154

3. यादृशत्वया पाण्डुर वर्णो श्लोको लिखितस्तादृशः मया पठितः।

हा० चू० : पृ० 125

4. पूर्वोक्त

5. मुदगरक। स स्य भगवान् विष्णुमध्यापयन् तिष्ठति।

हा० चू० : पृ० 123

6. हा० चू० : पृ० 124

7. आः पातकिनि। मा स्पृश मा स्पृश। त्वयि यमदण्डोऽयं दण्डो।

हा० चू० : पृ० 139

8. पुष्टापि रक्षितापि प्रयत्नो दान विरहितापि।

गौरिवि वन्ध्याभूता भवति परं कष्टदा गृहिणः॥

त्रिपुर० : श्लोक 58 : पृ० 75

9. रुक्मिणी० : श्लोक 14 : पृ० 50

10. उज्जावलयतु मत्कुलं कमलाकर कमलपरिग्रहेण भक्त जनानु गृहिलो गोविन्द।

समुद्र० : पृ० 190

विवाह में द्न्द्राणीपूजा ¹ गौरी ² सौभाग्य की कामना करना, जो तत्समय प्रचलित था, आज भी लोक में प्रचलित है।

वर्तमान समय में लोक में प्रचलित वधूपक्ष की तरफ से बारात में सम्मिलित बारातियों का स्वागत लड़कों के पिता अथवा निकट सम्बन्धियों द्वारा किया जाता है यह प्रथा तत्समय में भी प्रचलित थी। ³ वर तथा वधू पक्ष की ओर से रिश्तेदारों के पास दूत भेजे जाते थे। ⁴ विवाहार्थ यात्रा लोग मुहूर्त देखकर ⁵ एवं धार्मिक कृत्य ⁶ सम्पन्न कर, करते थे। उपस्थित व्यक्तियों को शिविरों में ठहराया जाता था। ⁷

स्त्री-व्रता :

वत्सराज के स्वरों से पता चलता है कि उस समय कन्यारों विवाह के लिये

1. सुबुद्धिके। भवता भगवतो सुबुद्धिं विज्ञाप्य विवाह पूर्व का लाचार प्राप्तन्द्राणी पूजार्थं वत्सा रुक्मिणी त्वरितं देवायतनं प्रापयितव्या।

रु० ह० : पृ० 64

2. तसुद्र०: श्लोक 12 : पृ० 157

3. तदग्रत एव नोत्वा कृष्णामावाप्तयामि तावत्। अयि कृष्णदेव। इमां रथ्यां कृतार्थयता भवता समलंक्रियतां शिविर सन्निवेशः। रुक्मि० : पृ० 63

4. अयि विजये गच्छ समानय शिष्यान् दूतम्।

रुक्मि० : पृ० 51

अयि सन्धानक निवेदय चेदोश्वराय। आगता एव विवाह प्रत्यासत्ता कौण्डिनपुरम्।

रुक्मि० : पृ० 63

5. इह सम्प्रधारितेव प्रयाणम्। प्रियम्बद। आह्वयन्तां मौहूर्तिकाः।

रुक्मि० : पृ० 49

6. प्रयाणमंगल्य विधान होमः।

रु० ह० : श्लोक 16 : पृ० 50

7. रु० ह० : पृ० 63

स्वतन्त्र नहीं थी।¹ वे विवाह को भाग्याधीन मानती थीं।² विवाहार्थ कन्यापहरण समाज में प्रचलित था।³ जिसे स्मृतिकारों ने 'वैशाघ' और 'राक्षस' विवाहों के अन्तर्गत गिना है। कन्यारों स्मर एवं श्लेष वर्धन का कारण मानो जाते थे।⁴ पितृ गृह में वे स्वच्छन्दतापूर्वक विचरणा करती थीं।⁵ चित्रकला और संगीत में उनको विशेष रुचि होती थी।⁶ स्त्रियाँ सभा में अपनी राय दे सकती थी।⁷ धार्मिक व्यभिचार ने उनको स्थिति को हेय बना दिया था। पर्दाप्रथा⁸ एवं सती प्रथा⁹ प्रचलित थी। कुल वधुरी अपने ते बड़े पुत्र्यों के सम्मुख बात नहीं कर सकती थीं।¹⁰

1. हृदयं मदनायत्तं कुरायत्तं च गुह्यनत्येव। तुक्कटः कन्यकामावः।

रुक्मिणः श्लोक 1 : पृष्ठ 55

2. यत्ताम्यां न कापि तानि भाग्यानि अभ्यर्थिता, ये कृष्णस्य प्रियत्वं प्राप्यते
अथवा दैवहताया मम दोनत्वमिदम्।

रुक्मिणः पृष्ठ 57

3. रुक्मिणः पृष्ठ 38

4. रुक्मिणः श्लोक 2 : पृष्ठ 47

5. संख्यः। अष्टपूर्व समेतं सुरभि कुसुमप्राग्भार निर्भरभूतं वेलावनम्।

समुद्रः पृष्ठ 155

6. रुक्मिणः पृष्ठ 55-57, समुद्रः पृष्ठ 155-60, कर्पूरः 25-30

7. रुक्मिणः पृष्ठ 51

8. भर्तृदारिके। तदत्र उपरितलं सौधशिखरमास्वय नवाक्षान्तरे प्रेषा वहे।

रुक्मिणः पृष्ठ 59

9. समुद्रमंथनः पृष्ठ 183

10. सम्प्रति तर्वात्मनवतरः सम्भूतः। आयातो महाराज भीष्मकः।

रुक्मिणः पृष्ठ 62

वस्त्र एवं आभूषण :

वत्सराज के स्पर्कों में लोक में प्रचलित वस्त्र एवं आभूषणों का संकेत भी मिलता है। उसमें उत्तरीय, योगपट्ट, घोनांगुळ, अंगुळ और बालकल को वर्णित है। मुनि, ब्रह्मचारी, तपस्वी, कथाय-वस्त्र और बालकल का उपयोग करते थे।¹ विलासो गणिकारं, विलास के समय इन्हें अनुपयुक्त समझते थीं।² कामीजन एवं विलासो घोनांगुळ ; घोन में बना रेशमी वस्त्र धारण करते थे।³ उत्तरीय वस्त्र शरीर के अधोभाग पर धारण किया जाता था। आश्रयकता पट्टे पर बैठने के लिए भी इसका प्रयोग होता था।⁴ इसी प्रकार तन्यासो योगपट्ट धारण करते थे। धूर्ता से पीड़ित जन्तुमुदाय उन्हें इसी पट्ट के बांध देता था।⁵ वत्सराज के स्पर्कों में मुरुर,⁶ मंजोर,⁷ अंगुठी,⁸ हार,⁹ ताघोज,¹⁰

1. कौण्डेयुधिवल्कलावधवलंकारमित्थं तमः ।

विलासो : श्लोक 17 : पृष्ठ 6

2. सुभगा मुंघ कथायाम्बरं । अलंकारोमिहरि चन्देनानांगानि ।

हारो पृष्ठ : पृष्ठ 138

3. तत्किमेष त्वदोय घोनांगुळ मुंगारितः सुव्यक्तं वर्पटति पात्तरेषु ।

कूर्पूः पृष्ठ 29

4. कुजम्भः । उत्तरीयमासनवत्कृत्वा । इत्यमलंकारोऽनु दानधेन्द्रः ।

तमुद्रः पृष्ठ 180

5. इति योगपट्टाभ्यां जयोरपि कण्ठीतन्दानयतः ।

हारो पृष्ठ : पृष्ठ 12

6. तिजानेर्गुण केमनिर्गत चन्द्रारंगनान्मुरैः ।

प्रत्यूषेऽपि न दीयते रत्निते निद्रावकाशो मनाद् ।।

कूर्पूः श्लोक 3 : पृष्ठ 23

7. वाद्यालत्वं पदालम्बो मंजोरो कुस्तां पिराद् ।

कूर्पूः श्लोक 20 : पृष्ठ 29

8. यक्ष्याध्याय आज्ञापयति इत्यंगुलीयकं गुह्याति ।

हारो पृष्ठ : पृष्ठ 132

9. स्य कुरु हाहदत्तः प्रेक्षितः हारः समर्पितः ।

कूर्पूः पृष्ठ 30

10. चन्दन पंक गोमेन बीजवत्कृत्यैवमानय ।

हारोपृष्ठ : पृष्ठ 137

कर्णफूल, ¹ कंगन, ² आदि लोक प्रचलित आभूषणों का उल्लेख मिलता है। शृंगार के उपकरणों के रूप में नवमालिका, ³ चमेली, ⁴ कमल ⁵ आदि के फूलों का वर्णन है। शरीर में अंग राग के रूप में लोभ्युष्प को रज, पैरों में अलक्तक, नेत्रों में अंजन तथा मस्तक पर चन्दन लगाया जाता था। ⁶ लोग अंगों पर चन्दन और कर्पूर भी लगाते थे। ⁷ ताप के शमन के लिए कर्पूर का प्रयोग भी होता था। ⁸ स्त्री और पुंस्व ताम्बूल का प्रयोग करते थे। ⁹ प्रसाधन के लिए दर्पण का प्रयोग होता था। ¹⁰

धूत :

वत्सराज के रूपकद्वय - कर्पूरचरित भाण और हास्य छूडामणि में धूत का विशेष वर्णन है। यह शिष्ट जनानुमोदित भी प्रतीत होता है। चिट कर्पूरक धूत कर्म से होन धन को स्वप्नवत् मानता है। ¹¹ माणिमद्र के कारण उसे धूत से अतिशय

1. रू० ह० : श्लोक 4 : पृ० 57

2. आमुक्त कंकणभूजो मधुकैटभारिः ।

रू० ह० : श्लोक 13 : पृ० 50

3. स्या पुनश्चिरसमागता ।

नवमालिका । हा० धू० : पृ० 133-34

4. तसुद्र० : श्लोक 10 : पृ० 256

5. पूजयति हरिहृदये हरिं वक्षस्थल निहित कमल मालया ।

तसुद्र० : पृ० 154

6. रूपकषादकम् : पृ० 52, 57, 134, 154, 157

7. कर्पूर० : पृ० 29

8. कर्पूर० : पृ० 26

9. वाक्सारोधी गद इव भुजे किंच ताम्बूल गोलः ।

कर्पूर० : श्लोक : 15

10. स्वतः क्षीमं याति मुकुरं पश्यसियदा ।

तसुद्र० : श्लोक 1 : पृ० 178

11. धूत श्रोडाविहोनस्य वेश्यासुविमुक्तस्य च ।

विद्यमानमपि व्यक्तं धनं स्वप्न धनोपमम् ।

कर्पूर० : श्लोक 8 : पृ० 25

धन की प्राप्ति होती है।¹ घूतकर करण्डक भी जुर से सुखी हो गया था।²

वेश्यावृत्ति -

रूपकों से हमें तत्कालीन समाज में वेश्याओं के अस्तित्व का पता चलता है। ये सामान्य स्त्री को अपेक्षा कलाओं में पारंगत होती थी। कुछ उच्च चरित्र की वेश्यारैं केवल गुणियों पर रोझती थीं। विलासवती और मदन सुन्दरी ऐसी ही वेश्यारैं थी। कुदटनी कलावती को इच्छा के विपरीत विलासवती घूतकर पर मुग्ध थी³। इसी प्रकार मदन सुन्दरी कला करण्डक के गुणों पर रोझी थी।⁴ वृद्धा कपटकेति कामुकता से परिपूर्ण वेश्या है।⁵

चोरी :

वत्सराज के रूपकों के वर्णन से चौर कर्म का भी पता चलता है। चोरियाँ रात में सेंध लगाकर की जाती थी।⁶ कभी-कभी इस निमित्त दरवाजे भी तोड़ दिये जाते थे।⁷

1. वयस्य चन्दनक। पश्य भगवतो माणिभद्रस्य प्रसाद महिमानम्।

दित्रैरेव दिने कृतकृत्याः स्मः।

क्यू० : पू० 35

2. स खलु निर्जित सकल घूतकर द्रविणो मदनोद्याने त्वया सह पान गोष्ठी महोत्सवं मानयिष्यति।

हा० घू० : पू० 135

ज्ञान० वत्स कलाकरण्डक। अपि निर्जिता घूतकाराः। पूर्णास्ते मनोरथाः।

हा० घू० : पू० 148

3. स्या खलु तव दुहिता घूतकर क्यूरके विलग्न हृदया।

क्यू० : पू० 35

4. नूनमेतस्या मम दुहितुः तस्मिन् कलाकरण्डके अर्थान्ये अनुरक्ताया स्य व्यापारे भविष्यति।

हा० घू० : पू० 120

5. द्रष्टव्य - हा० घू० में कपटकेलि का चरित्र

6. उपरि चतुर चोरेदत्त सन्धिप्रकारम् सदनमिव समस्तं विशक्मेतदिभाति।

किरात० : श्लोक 14 : पू० 5

7. कपट० - द्वारमुदटितम्।

स० ह० : पू० 120

लोक-विश्वास :

वत्सराजकालीन लोकजीवन में जादू टोने और भूत-प्रेम में अतिशय विश्वास था।¹ मन्त्र बल से लोग सिद्धि प्राप्त कर सकते थे।² कृषीकरण, उच्चाटन तथा रक्षा के निमित्त मन्त्र-यन्त्रों का प्रयोग किया जाता था।³ ज्योतिष में लोगों की पूर्ण आस्था थी।⁴ लोगों का विश्वास था कि ग्रहण आदि पर्वों पर दान⁵ तथा दुःस्वप्न आदि के शमन के शान्ति कर्म⁶ करना चाहिए। ऐसी लोक-मान्यता थी कि आँखों में लांगली का अंजन लगाने से गुप्त धन दिखाई पड़ता है।⁷ अनेक पौराणिक आख्यानों जैसे- चन्द्रग्रहण में राहु चन्द्र को ग्रस्त लेता है,⁸ उदयाचल⁹

1. ॥क॥ श्रुतो भूताप्साः किमु न भवता तस्य विषमः ।

रुक्मि० : पृ० 42॥लोक्यु॥ 8

॥ख॥ अयि नाथ! न खलु न खलु अहं प्रेतो वेतालो वा ।

त्रिपुर० : पृ० 103

2. ॥क॥ अये मदन सुन्दरो विरह ज्वरातुरस्य तदशीकरणमन्त्र प्रयोग एव मेशरणम् ।

हा० चू० : 136

॥ख॥ स हि... मदीय मन्त्र मन्त्रप्रभावादिजयमाकाङ्क्षति ।

हा० चू० : पृ० 132

3. कथमहं पुण्डरीकाक्ष प्रसाद मन्त्रमपहाय त्वद् भर्तृदारिकायाः स्मर
सिद्धिमन्त्रमाराधयिष्ये ।

तमुद्र : पृ० 152

4. आनय मौहूर्तिकान्, परिनिष्ठोयतां विवाहलग्नम् ।

रु० ह० : पृ० 49

5. मार्घ प्रतोक्षस्व सूर्य चन्द्रोपरागादि पर्व । मूर्ख पश्यति मे महादानानि ।

त्रिपुर० : पृ० 75

6. अकथनं दुःस्वप्नानां श्रेयस्तदिदानीं मुनि पथनेन मुखरो कृतोऽस्मि ।

अहं शान्तिकं समाप्स्यागच्छामि ।

त्रिपुर० : 109-110

7. रसेन लांगलीयेन सभस्त्रेणाजितेक्ष्ण निधनं वा निधानं धीरः समाधिगच्छति ।

हा०चू० : श्लोक 10:पृ० 143

8. त्रिपुर०:श्लोक 14 : पृ० 78 तथा श्लोक 6 : पृ० 76

9. रु० ह० : श्लोक 8 : पृ० 61 तथा श्लोक 3 : पृ० 37

अस्तायल¹ नामक पर्वत है, गंगा किष्णु के नख से निकली है,² पर्वतों के पंख हुआ करते थे, जिसे इन्द्र ने काट डाला,³ मन्दर⁴ और मैनाक⁵ नामक दो पर्वत हैं, जिनके आज भी पंख है अभिलाषाओं की पूर्ति करनेवाला कल्पवृक्ष नामक वृक्ष है।⁶ शेष पृथिवी को फल पर धारण किये हुए हैं⁷ पर लोगों को पूर्ण विश्वास था। इसी प्रकार इन्द्रजाल तथा माया पर लोगों का पूर्ण विश्वास था।⁸

मधपान :

वत्सराज के स्वर्कों के अनुसार तत्कालीन लोक जीवन में केयार, भुजंग, विट, काशी, क्षत्रिय आदि मध का सेवन करते थे।⁹ कपटकेलि के घर मधपान से बेहोश होने पर ही चोरी हुई थी, किन्तु पुनः चुराये गये धन के प्राप्त होने पर वह मुद्गरक को मदिरापान महोत्सव का वचन देती है।¹⁰ चन्द्रसेना के

1. हा० चू० : श्लोक 3 : पृ० 118

2. समुद्र० : श्लोक 27 : पृ० 162

3. त्रिपुर० : श्लोक 35 : पृ० 84 तथा समुद्र० : श्लोक 41 : पृ० 165

4. समुद्र : श्लोक 7 : पृ०

5. समुद्र : श्लोक 32 : पृ० 163

6. त्रिपुर० : श्लोक 1 : पृ० 75 तथा कर्पू० : श्लोक 6 : पृ० 24

7. अयि नागराज लज्जेमयी अत्र त्वामालम्बना ।

त्रिपुर० : पृ० 83

8. ॥क॥ इन्द्रजालमुत्था इव दृश्यमाना तवशत्रवः ।

किराता० : पृ० 2

॥ख॥ न भवति यदि माया निष्पिधानं पिधानम् ॥

कर्पूर० : श्लोक 7 : पृ० 24

9. रूपक षट्कम् : पृ० 27, 42-44, 119, 113

10. मुद्गरक मुद्गरक । एहि एहि तावत्प्रापिते सर्व स्वे भूयिष्ठं मदिरा महोत्सवं मानयितव्यः ।

हा० चू० : पृ० 123

यहाँ चोरी मदिरापान के कारण हो सम्भव हो पायी थी।¹ शौण्डिकागार में मदिरा के कारण हो चतुरक प्रताडित किया गया था।² अकूर भी प्रियम्बद से लेख लिखने का कारण मदिरापान कहता है।³

भाग्यवादिता :

संसार की घटनाओं में जब कार्य कारण सम्बन्ध का पता नहीं चलता, तब उसे हम भाग्य कह देते हैं। यह भाग्य ही मनुष्य के शुभाशुभ का विधान करता है। वत्सराज के रूपकों में भाग्य विषयक अनेक घटनाएँ आयी हैं। विधि के विपरीत होने पर अर्जुन का बाण कलंक द्वय का भागी बनता है।⁴ भाग्यहीन रुक्मिणी स्वयं को धिक्कारती हुई कहती है कि 'भाग्य दिये नहीं जाते, कौन जानता है कि विधि आगे क्या करनेवाला है।'⁵ कपटकेलि पेश्या का घेठ मुदगरक धनहानि भाग्य के अधीन मानता है⁶ इसीतरह भीष्मक दैव दैवगति को दुर्घिज्ञेय बताते

1. अथाहं तदगृहे मत्तं सुप्तपरिजने अस्वामिक इव प्रकामं सर्वस्वादाया पक्रान्तोऽस्मि ।

कूर्पू० : पृ० 27

2. अयं स चतुरक : निस्थामकरणश्रामः प्रकामं तोषु से वया निद्रया-सान्द्रया श्रुतः सन्निपातादिवापतत् ।।
अहं च यद्यक पुम्बनमात्रपरो मदिरया अभिभूततदुत्संगतो हारमादाय निष्क्रान्तोऽस्मि ।

कूर्पू० : पृ० 34

3. अकूरप्रदत्तो यं लेखः किमु न मदिरा पान समये ।

रुक्मि० : श्लोक 18 : पृ० 42

4. किराता० : श्लोक 35 : पृ० 13

5. अथवा दैवदताया मम दोन त्पम् । न खलु भाग्यानि दत्तानि भवन्ति ।

रु०ह० : पृ० 57

6. अथवा दैवाधीना धनहानिः ।

हा० पू० : पृ० 122

बताते हैं।¹ शुक्र भी भाग्य को अचिन्त्य चरित एवं स्वकृता होने कहते हैं।² इसी प्रकार सर्वताप, विशदाशय से कहता है- 'हमारा जो होना है वह होकर रहेगा।'³ समुद्र मथन में कृष्ण लक्ष्मी को उपलब्धि को अपने भाग्य एवं पुण्य का फल मानते हैं।⁴

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि तत्कालीन लोक जीवन में लोगों की भाग्य पर भारी आस्था थी।

मनोरंजन :

पर्वों के अतिरिक्त देव विशेष को जन्म तिथि पर अथवा अन्य विशिष्ट अवसरों पर साज-सज्जा के साथ यात्रा महोत्सव तत्कालीन लोक जीवन में आयोजित किये जाते थे। नोलकण्ठ यात्रा⁵ और चक्रस्वामी⁶ यात्रा ऐसे ही महोत्सव थे। शिकार खेलना विनोद का प्रिय साधन था।⁷ मदिरापान एवं वेश्यावृत्ति आनन्द के साधन थे।⁸

1. क्वपुनरेतदर्थस्य सम्भवः । अथवा दुर्विक्रिया देवगति ।

रु० ह० : पृ० 62

2. त्रिपुर : श्लोक : 5 : पृ० 110

3. तदार्य ! यथेच्छं गम्यतां तावत् । यदस्मात्तु भावि तदभविष्यति ।

त्रिपुर० : 112- 113

4. इदानीं मे सुकृत परिपाकस्य फलावसरः ।

समुद्र० : पृ० 190

5. अथ किल नोलकण्ठयात्रा महोत्सव भाणमभिनेतुमादिशति ।

कूर्पूर० : पृ० 23

6. अहं कि कालंजरे चक्रस्वाभियात्रासमागत

रु० ह० : पृ० 37

7. रूपक षट्कम् : पृ० 12-16 एवं 126

8. रूपक षट्कम् : पृ० 23, 61-65, 164

कन्याओं के विनोद का साधन सुरम्य स्थल एवं उद्यानों में भ्रमण करना था । ¹ चित्रपट एवं आलेख्य भी कुमारियों के मनोरंजन के साधन थे । ²

1. अदृष्टपूर्व ममैतत् सुरभि कुसुमप्राग्भारनिर्भरमृतविलासनम् ।

समुद्र 0 : पृ 0 155

2. तदेतदेवालेख्यमवितृष्णं विभावयामि ।

रुक्मिणी : पृ 0 57

उपसंहार

प्रस्तुत 'लघु शोध-प्रबन्ध' में वत्सराज के उपलब्ध रूपकों में चित्रित तत्कालीन लोक संस्कृति के विभिन्न पक्षों को समुद्धाटित करने का प्रयास किया गया है। वस्तुतः अभी तक संस्कृत साहित्य को अपरिमित निधि में उपलब्ध लोक संस्कृति के मुक्ता कणों का अन्वेषण करने के प्रयास बहुत कम हुए हैं। सामान्यतया संस्कृत साहित्य को शास्त्रीय पण्डितों द्वारा प्रणीत दरबारी साहित्य समझा जाता रहा है और उस पर यह दोषारोपण किया जाता रहा है कि संस्कृत के साहित्यकारों ने जन जीवन में जन सामान्य की उपेक्षा कर केवल देवी-देवताओं की स्तुतियों तथा अपने आश्रय दाता राजाओं के गुणगान में ही अपने कवित्व का साफल्य समझा है, किन्तु संस्कृत साहित्य के प्रत्येक ग्रन्थ का सूक्ष्मेक्षिकया स्वतन्त्र अध्ययन करने पर उपर्युक्त मत तथ्यहीन सिद्ध होता है। संस्कृत साहित्य में लोक की महिमा और इस महिमाशाली लोक के विविध पक्षों का प्रासंगिक रूप से जो सूक्ष्म और सटीक चित्रण हुआ है वह अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है। मैकडानल¹ तथा विन्टरनित्ज² संस्कृत साहित्य को इस अमूल्य निधि की भलीभाँति पहचान लिया था और उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की थी। इसी तथ्य को दृष्टिगत करते हुए हमने वत्सराज के रूपकों में लोक संस्कृति को अपने अध्ययन का विषय चुना।

प्रस्तुत 'लघु शोध प्रबन्ध' कुल छः अध्यायों में विभाजित है। प्रारम्भ में पूर्व-पोठिका और उत्तर-पोठिका तथा अन्त में उपसंहार स्वतन्त्र शीर्षक है। पूर्वपोठिका भाग में वत्सराज के स्थितिकाल और तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक परिस्थितियों के साथ-साथ समसामयिक संस्कृत साहित्य और उसकी प्रवृत्तियों पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। उत्तर-पोठिका में लोक और लोक-संस्कृति की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए लोक के प्रति संस्कृत साहित्यकारों के दृष्टिकोण को रूपायित किया गया है। संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने लोक के

1. मैकडानल : इण्डियाज पाब्लिट अध्याय 6 : पृ० 115-116

2. विन्टरनित्ज हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर : भाग 3 : पृ० 133

अन्तर्गत स्थावर एवं जंगम दोनों का हो परिगणन किया था, तथापि काव्यशास्त्रोप दृष्टि में लोक या तो 'स्वाभावोक्ति अलंकार' के साथ बैठा था या फिर 'ग्राम्य' के रूप में जाना जाता था, किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि संस्कृत काव्य शास्त्रियों की दृष्टि में लोक और लोक संस्कृति का चित्रण काव्य में 'ग्राम्यत्व' के अपर पर्याय थे। संस्कृति का कवि और काव्यशास्त्री दोनों ही लोक के महत्त्व से भली-भाँति परिचित थे। काव्य हेतुओं के अन्तर्गत लोक के अवस्था से प्राप्त निपुणता को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। वैयाकरण, धर्मशास्त्री और एक निश्चित सीमा तक दर्शनशास्त्री भी लोक और लोक संस्कृति को बहुत सम्मान की दृष्टि से देखते थे यह 'लोक' शास्त्रोप चैतन्य से रहित, जन सामान्य का वाचक है, जो न केवल झोपड़ियों गाँवों अथवा जंगलों में रहता है, अपितु विशाल नगरों में भी फैला हुआ है। लोक संस्कृति केवल इसी वर्ग को संस्कृति नहीं, अपितु समृद्ध नगरों में निवास करनेवाले शिक्षातिशिक्षित व्यक्तियों के आचरण एवं व्यवहारों में मिल जायेगी।

वत्सराज यद्यपि संस्कृत के उद्भट विद्वान और कालंजराधिपति के अमात्य थे, किन्तु साहित्यकार होने के नाते उनकी दृष्टि बड़ी पैनी थी। उनके अमात्य पद ने उनकी कदाचित् जन सामान्य को बहुत समीप से परखने उनकी समस्याओं को जानने का अवसर दिया होगा, इसीलिए उनकी कृतियों में लोक संस्कृति के तत्त्वों की प्रचुरता मिलती है। यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि वत्सराज ने अपनी लेखनी का विषय केवल दृश्य काव्यों को बनाया, जिसका सीधा सम्बन्ध अपार जन समूह— जिसमें शिक्षित एवं अशिक्षित सभी सम्मिलित रहते हैं। उन्होंने दृश्य काव्य को वे ही रूपक विधाएँ चुनीं, जो शास्त्र में कम किन्तु लोक में अधिक प्रसिद्ध और प्रचलित थीं। व्यायोग ईहामुग डिम, समवकार, भाण और प्रहसन— ये सभी रूपक विधाएँ विप्लव रूप से लोक मूलक विधाएँ हैं जिनका उद्देश्य लोक मनोरंजन है। यद्यपि हमारी तीर पर देखने से कर्पूरचरित और हास्य घूडामणि को छोड़कर शेष रूपकों की कथावस्तु महाभारत और पुराणों से ग्रहीत प्रतीत होती है, किन्तु ऐसा होने पर भी इनके कथानकों की कथानक रुढ़ियाँ विप्लव रूप से लोक प्रचलित घोर गाथाओं और प्रेमकथानों में मिल जाती हैं। इस प्रकार महाभारत और पुराणों के

ये आख्यान लोक के विभिन्न वर्गों में घूमते हुए वत्सराज तक पहुँचे हैं, जिनमें वत्सराज ने शास्त्रीय और लौकिक दोनों ही परम्पराओं का सुन्दर समन्वय कर अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं।

हास्य चुड़ामणि प्रहसन और कर्पूरचरित भाण की कथावस्तु तो विद्वद् रूप से लोक धर्मी है, जबकि अन्य रूपकों में लोकधर्मी प्रवृत्ति के लक्षण मात्र दिखाई पड़ते हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में वत्सराज के रूपकों की कथावस्तु की लोकधर्मिता विषय पर प्रकाश डाला गया है, जबकि तीसरे अध्याय में इन रूपकों के काव्यशास्त्रीय स्वरूप और उसकी लोक मूलकता का प्रतिपादन किया गया है। यहाँ यह स्पष्ट करना अप्रासंगिक न होगा कि वत्सराज ने अपने डिम और समवकार रूपकों के लिए वही शीर्षक और विषय वस्तु चुना, जिनका स्वयं भरत ने नाट्य-मण्डप निर्माण के अनन्तर सर्वप्रथम मंचन किया था। यह भी उल्लेखनीय है कि नाट्य मण्डप निर्माण के पूर्व भरत ने अमृत मन्थन की घटना पर आधारित समवकार का अभिनय प्रस्तुत किया था, जबकि कालिदास के अनुसार 'लक्ष्मी स्वयम्बर' नाटक खेला गया था। वत्सराज का रुक्मिणीहरण ईहामुग लोक तात्त्विक दृष्टि से 'लक्ष्मी स्वयम्बर' के बहुत नजदीक है। इस प्रकार स्पष्ट है कि वत्सराज द्वारा चुनी हुई रूपक विधाओं का अस्तित्व नाट्यशास्त्र और नाट्यशाला के निर्माण से पूर्व भी था। यद्यपि भाण और प्रहसन को छोड़कर हम इन रूपकों में से अन्य विधाओं का स्वरूप लोक में क्या था, प्रमाणाभाव के कारण जानने में असमर्थ हैं, किन्तु, स्वांग, नौटंकी, सांगीत आदि सम्प्रति प्रचलित लोक नाट्यों में इनके बीज दूँटे जा सकते हैं।

प्रहसनों का उद्देश्य केवल नकल उतारकर हँसना-हँसाना होता है। यद्यपि काव्यशास्त्रीयों के हाथों में पड़कर इसका प्रयोजन व्यंग्यपरक हो गया है। आज भी लोक-जीवन में 'खोइया' जैसे प्रहसन प्रचलित हैं, जिनमें हास्य का अतिरेक होता है, भाण तो नाम से ही लोक धर्मी रूपक है, जिसके दर्शन आज भी भाँड़ों द्वारा रईसों की नकल तथा कुछ क्षेत्रों में भाटों या बहुरूपियों द्वारा किसी व्यक्ति से इनाम प्राप्त करने की लालसा में उसकी नकल उतारने के क्रियाकलापों में होते हैं।

यहो नहीं वत्सराज ने अपने रूपकों में तत्कालीन लोक धर्म का भी सजीव चित्रण किया है। इन रूपकों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि उन दिनों कुमारी कन्यारों विवाह के अवसर पर सौभाग्य वृद्धि के लिए इन्द्राणी और गौरी की पूजा करती थीं। इन्द्राणी की पूजा के पीछे यह धार्मिक विश्वास प्रचलित था कि जिस प्रकार इन्द्राणी ने अपनी सपत्नियों पर विजय प्राप्त कर पति को अपने वश में कर लिया था और वह पति न केवल अजर-अमर अपितु सर्वोत्कृष्ट श्रेष्ठ से सम्पन्न है, उसी प्रकार कुमारी कन्या भी अपनी सपत्नियों पर विजय प्राप्त कर पति को सर्वाधिक प्रिय बनें और उसका पति भी स्वस्थ दीर्घजीवी एवं वैभव से सम्पन्न हो। गौरी की पूजा के पीछे पार्वती की हो भौंति अभीष्ट वर प्राप्ति का उद्देश्य निहित था। मणिभद्र जैसे यक्षों की पूजा धनप्राप्ति के लिए की जाती थी। लोक में लक्ष्मीपूजा का उद्देश्य धन प्राप्ति रहा है। देवताओं का स्वामी धनाधिपति कुबेर यक्ष ही है। दोषावली की रात्रि यक्ष रात्रि के नाम से जानी जाती है। हम सभी जानते हैं कि दोषावली की रात्रि में लक्ष्मी, जो धन की अधिष्ठात्री देवी हैं की हो पूजा की जाती है। चक्रस्वामी और नोलकण्ठ कालंजर के स्थानीय देवता थे, जिनके यात्रा महोत्सवों का बड़ी धूमधाम से आयोजन किया जाता था। इन्होंने महोत्सवों के अवसर पर वत्सराज के कर्पूरचरित, घुडामणि और रुक्मिणीहरण रूपकों का प्रथम बार अभिनय हुआ था, जिससे प्रतीत होता है कि ऐसे धार्मिक मेलों के अवसर पर विभिन्न मनोरंजनात्मक अभिनय, खेल आदि प्रदर्शित किये जाते थे।

तत्कालीन समाज में अनेक प्रकार के लोक-विश्वासों का पता इन रूपकों से चलता है। धर्मभीरु लोग शुभ मुहूर्त देखकर एवं हवन कार्य सम्पन्न कर यात्रा करते थे। ग्रहण आदि पर्वों के अवसर पर दान देने की प्रथा प्रचलित थी। अमंगल विनाश के लिए शान्ति पाठ का आयोजन किया जाता था। शास्त्री कर्तव्यों के साथ-साथ लोग अपने कुल क्रमागत आचारों का पालन करते थे। ब्राह्मण पूज्य और श्रेष्ठ सम्झे जाते थे। क्षत्रियों का राज्य का अधिकारी माना जाता था। तत्कालीन समाज में ब्राह्म, गान्धर्व और आसुर विवाह की प्रथाएँ प्रचलित थीं। शराबी, जुआरी एवं बेयारें तत्कालीन समाज में अज्ञात न थे। इन रूपकों से तत्कालीन लोक जीवन के अनेक पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है। यहो नहीं वत्सराज ने इन रूपकों की माध्या

को लोक प्रचलित रूप देने का प्रयास किया है, जिसमें अनेक लोकोक्तियाँ, मुहावरों और लोकोपमानों का प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वत्सराज के रूपक लोक संस्कृति के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित सामग्री से सम्पन्न हैं। हाँ उन्हें परखने के लिए लोक संस्कृति का यथार्थ नेत्रों पर लगाना होगा।

सुन्दर गन्ध सूची

अथर्ववेद संहिता ॥ सायणभाष्य ॥ 1961 विवेकानन्द वैदिक रिसर्च सेन्टर
 अथर्ववेद संहिता ॥ सातवलेकर ॥ सं० चतुर्थ स्वाध्याय मण्डल, पारडी
 ऋग्वेद संहिता ॥ माधववृत्ति ॥ 1939 ई० मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी
 ऋग्वेद संहिता ॥ सायणभाष्य ॥ वैदिक संग्रोधन मण्डल, पूना
 यजुर्वेद संहिता ॥ सातवलेकर ॥ सं० चतुर्थ स्वाध्याय मण्डल, पारडी
 यजुर्वेद भाष्य भास्कर ॥ दयानन्द ॥ सं० सुदर्शन लाल, आर्य साहित्य प्रचार खारो
 वावली, दिल्ली

सामवेद ॥ श्रीराम शर्मा ॥ संस्कृति संस्थान, बरेली
 तैत्तिरीय संहिता 1970, वैदिक संग्रोधन मण्डल, पूना
 बाजसनेयि संहिता ॥ सं० बेवर ॥ वि० 1972 चौखम्भा संस्कृत सोरोज, वाराणसी
 ऐतरेय ब्राह्मण ॥ सायण भाष्य ॥ वि० 1986 आनन्दाश्रम संस्कृत सोरोज, पूना
 जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण ॥ सायणभाष्य ॥ आनन्दाश्रम संस्कृत सोरोज, पूना
 ताण्ड्य महाब्राह्मण, वि० 1991, चौखम्भा संस्कृत सोरोज, वाराणसी
 तैत्तिरीय ब्राह्मण, 1938 आनन्दाश्रम संस्कृत सोरोज, पूना
 तैत्तिरीय आरण्यक, 1927, आनन्दाश्रम संस्कृत सोरोज, सं० 36, पूना
 शतपथ ब्राह्मण, सं० बेवर 1924 लिपजिग
 शतपथ ब्राह्मण ॥ सायणभाष्य ॥ निर्णय सागर संस्करण, बम्बई
 आपस्तम्ब गृह्यसूत्र, हरदत्तमिश्र कृत टीका, सं० चिन्मय शास्त्री, 1928
 जैमिनीय गृह्यसूत्र, श्रीनिवास कृत सुवोधिनो, लाहौर
 निरुक्त, चौखम्भा संस्कृत सोरोज, वाराणसी
 वैदिक धर्म एवं दर्शन ॥ २०वी० कोथ ॥ अनु० सूर्यकान्त, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी
 संस्कृत :

कर्पूर चरित भाग, टीका० प्रभुनाथ दिवेदी, 1985 ई०, चौखम्भा ओरियण्टलिया,
 वाराणसी

कालिका पुराण, 1964, वैकटेश्वर प्रेस, बम्बई

- काव्य प्रकाश, टी० सत्यव्रत सिंह, 1955, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
- काव्यानुशासन ॥ हेमचन्द्र ॥ 1910, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
- किरातार्जुनीयम् महाकाव्य, 1922, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
- किरातार्जुनीयम् व्यायोग, टी० रविनन्दन, 1977, चौखम्भा ओरियण्टलिया, वाराणसी
- चतुर्भाषी, सं० मोतीचन्द्र 1959, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई
- त्रिपुर दाह चम्पू, तज्जोर, 8/3048
- त्रिपुर विजयम्, नारायणशास्त्री, पोडुकावेरी, तंजौर
- दशस्यक ॥ सावलीक ॥ टी० भीलाशंकर, वि० 2019, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी
- नाट्यशास्त्र, सं० वल्लभ उपाध्याय, 1980, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी
- नाट्यशास्त्र ॥ अभिनव भारती ॥ 1934, गा० ओ० सो०, बड़ौदा
- नाट्यशास्त्र, 1894, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
- नाट्यशास्त्र-हि० टी० बाबूलाल शास्त्र, वि० 2042, चौखम्भा विश्व भारती, वाराणसी
- नाटक लक्षण रत्नकोश ॥ सागर नन्दो ॥ टी० बाबूलाल, वि० 2028, चौखम्भा
संस्कृत तीरोज, वाराणसी
- नाट्य दर्पण ॥ रामचन्द्र गुणचन्द्र ॥ गो० ओ० सो० बड़ौदा
- नाट्य दर्पण ॥ हिन्दी टीका विवेचन ॥ दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- भाव प्रकाश ॥ शारदातनय ॥ 1937, गा० ओ० सो०, बड़ौदा
- महाभारत, क्रिटिकल ॥ संस्करण ॥ पूना
- मनुस्मृति, टी० सुरेन्द्र कुमार, 1985 ई०, आर्य साहित्य प्रचार मण्डल, दिल्ली
- मत्स्य पुराण, आनन्दाश्रम संस्कृत तीरोज, पूना
- रामायण ॥ वाल्मीकि ॥ 1988, गोता प्रेस गोरखपुर
- रत्नार्णव सुधाकर, शिव भूपाल
- रत्नक षट्कम्, सं० सो० डी० दलाल, 1972 ओरियण्टल इ०, बड़ौदा
- श्रीमद् भगवद्गीता, गोता प्रेस, गोरखपुर
- शुक्रनोति, वि० सं० 1988, हिन्दू जगत कार्यालय, मुजफ्फरपुर।
- दर्पण साहित्य, टी० शालिग्रामशास्त्री, 1970 ई०, मोतीलाल बनारसीदास
- हरिवंश पुराण, नील काठ कृत भारतमाव टीका, 1869, बम्बई

हिन्दी :

अलबर्नी का भारत, अनु० संतराम, 1869 नवल खिओर प्रेस, लखनऊ
चन्देल और उनका राजत्वकाल, के० चन्द्र मिश्र, वि० सं० 2011, नागरी प्रचारिणी
सभा, वाराणसी

चन्देल कालीन मुन्देलखण्ड का इतिहास, अयोध्यानाथ शर्मा, हिन्दी साहित्य
सम्मेलन, इलाहाबाद

धर्मशास्त्र का इतिहास {पी०वी० काणे} अनु० अर्जुन चौबे के० यश हिन्दी समिति,
लखनऊ

प्राचीन भारत का इतिहास, के० सी० श्रीवास्तव, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद
प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास- डी०पी० रसमनराल, रस०
चन्द एण्ड कम्पनी, दिल्ली

प्राचीन काव्यों की रूप परम्परा, अगरचन्द नाहटा, वीकानेर
प्राचीन भारतीय लोक धर्म, वासुदेव शरण अग्रवाल, 1977, पृथिवी प्रकाशन, वाराणसी
भारतीय साहित्य का इतिहास {विद्वदनित्य} अनु० सुभद्र झा, 1978, मोतीलाल
बनारसीदास, वाराणसी

लोक मानस, डॉ० विद्याविन्दु सिंह, 1984, मधु प्रकाशन, 24 ताशकन्द मार्ग,
इलाहाबाद

लोक साहित्य की भूमिका, कृष्णदेव उपाध्याय, 1975, साहित्य भवन, प्रा० लि०,
इलाहाबाद

लोक साहित्य की सांस्कृतिक परम्परा, मनोहर शर्मा, 1961 रोशन लाल एण्ड
संस, जयपुर

लोक साहित्य विज्ञान, सत्येन्द्र, 1962, शिवलाल एण्ड कम्पनी, आगरा

लोक संस्कृति विशेषांक, 1974 हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद

संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, चन्द्रशेखर पाण्डेय, भारतीय प्रकाशन, कानपुर

संस्कृत साहित्य का इतिहास, वल्लभ उपाध्याय, 1965, शारदामन्दिर, वाराणसी

संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, राम जो उपाध्याय, वि० सं० 2018

रामनारायण लाल एण्ड संस, इलाहाबाद

संस्कृत नाटक {ए बी कोथक} अनु० उदयमानु सिंह, 1960 मोतीलाल, बनारसीदास
वाराणसी

कोश :

हिन्दी विश्व कोश, नगेन्द्र नाथ बसु, 1929 बी० आर० पब्लिशिंग
हाउस, दिल्ली

भारतीय चरित्र कोश {हिन्दी} सिंह देववर शास्त्री, चित्राव 1964

भारतीय चरित्र कोश, पूना 4

हिन्दी मुहावरा कोश, भीलानाथ तिवारी, हिन्दी बुक सेन्टर आसफ
अली रोड, दिल्ली

भारतीय कथावत कोश, विश्वनाथ दिनकर नरवणे 1977, त्रिवेणी संगम
112/5, प्रभात पथ, पुणे 4

ENGLISH BOOKS

- Bose, N.S. History of Chandela Jejakbhukti, 1956.
- Chaudhary, J.B. Political History of Northern India
from Jain sources.
- De, S.K. History of Sanskrit Literature, 1927
University of Calcutta.
- I, Shekhar. Sanskrit Drama, its origin and
decline, London, 1960